शिक्षक संदर्शिका

शिक्षण सिद्धान्त

तृतीय प्रश्न–पत्र

(बी० टी० सी० के नवीन संशोधित पाठ्यक्रमानुसार)

वर्ष 1981

NIEPA DC
D00344

राज्य शिक्षा संस्थान, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

मुख्य सम्पादक : श्री पृथ्वीराज चौहान
शिक्षा निदेशक, उत्तर प्रदेश

सम्पादक : श्री सच्चिदानन्द धौलाखण्डी
प्राचार्य,
राज्य शिक्षा संस्थान, उत्तर प्रदेश
इलाहाबाद

यूनिसेफ द्वारा प्रदत्त निर्मूल्य कागज पर मुद्रित

Sub. National Systems Unit,
National Institute of Educational
Planning and Administration
17-B.Sri Aurobindo Marg, New Delhi-110016
DOC. No....3.4.4.........
Date....................26/8/82

प्राक्कथन

राष्ट्रीय विकास की धारा में शिक्षा विशेषतया प्राथमिक स्तरीय शिक्षा के स्तरोन्नयन एवं गुणात्मक विकास की महत्वपूर्ण समस्या के प्रति शिक्षा विभाग अधिक जागरुक एवं क्रियाशील है। एक सुविज्ञ, कुशल एवं प्रशिक्षित शिक्षक द्वारा ही शिक्षा को मौलिक जीवन प्राप्त होता रहता है। फलस्वरूप शिक्षा की नवीन प्रवृत्तियों, विद्याओं एवं कतिपय आधारभूत व्यवहारिक कठिनाइयों को ध्यान में रखकर नवीन संशोधित द्विवर्षीय बी० टी० सी० पाठ्यक्रम को वर्ष 1980–81 से इस प्रदेश में प्रभावी किया गया है ।

वस्तुतः प्रचलित पाठ्यक्रम से नवीन पक्षों तथा प्रशेक्षणिक तत्वों से शिक्षक प्रशिक्षक अवगत हो सकें और वे शिक्षा की अभिनव भूमिका के निर्वहन में अपेक्षाकृत अधिक कार्य सक्षम बन सकें, इस आशय से संदर्भित पाठ्य क्रमाधारित प्रथम तथा द्वितीय वर्ष विषयक समस्त पांचों प्रश्नपत्रों से सम्बन्धित संदर्शिकाओं का अलग-अलग निर्माण किया गया है ।

यह विशेष रूप से विचारणीय है कि इस प्रस्तुत संदर्शिका में प्रशिक्षण विज्ञान (सैद्धान्तिक) के अन्तर्गत तृतीय प्रश्न–पत्र ,शिक्षण सिद्धान्त' (प्रथम वर्ष) के परिप्रेक्ष्य में उल्लेखनीय प्रकरणों पर प्रकाश डाला गया है यथा शिक्षण का अर्थ सामान्य सूत्र, इकाई योजना, शिक्षण विधियां शिक्षण युक्तियां, सहायक सामग्री, समवाय पाठ, दृढ़ीकरण की युक्तियां, वैयक्तिक एवं सामूहिक शिक्षण तथा नवीन शिक्षण प्रणालियां ।

इस संदर्शिका के सृजन हेतु दो कार्यशालायें आयोजित की गईं, जिसमें राज्य शिक्षा संस्थान, इलाहाबाद तथा अन्य शिक्षा संस्थाओं के प्रबुद्ध सदस्यगण ने सराहनीय योगदान किया है। एतदर्थ मैं उनका आभारी हूं ।

यह संदर्शिका मात्र दिशा निर्देशन करती है न कि दिशाओं को बांधती है । इसके सुधार हेतु शिक्षक प्रशिक्षकों एवं शिक्षाविदों से प्राप्त सुझावों का स्वागत किया जायगा ।

पृथ्वीराज चौहान,
शिक्षा निदेशक, उत्तर प्रदेश ।

दिनांक : 10–9–81

विषय–सूची

पाठ	पृष्ठ संख्या
—शिक्षण का अर्थ	1–10
—शिक्षण के सामान्य सूत्र	11–13
—इकाई योजना	14–17
—शिक्षण विधियां	18–25
—शिक्षण युक्तियां	26–34
—सहायक सामग्री	35–43
—समवाय पाठ	44–47
—वृढ़ीकरण की युक्तियां	48–51
—वैयक्तिक एवं सामूहिक शिक्षण	52–58
—नवीन शिक्षण प्रणालियां	59–65

पाठ 1

शिक्षण का अर्थ एवं उद्देश्य

शिक्षण युग–युगान्तर से चली आ रही एक क्रिया है। प्रत्येक युग की परिस्थितियों के ार इसके अर्थ एवं उद्देश्यों में परिवर्तन होता रहता है। कुछ लोगों के विचार में विषय–वस्तु बालक को रटा देना तथा परीक्षा पास करा देना ही शिक्षण है। कुछ के विचार में शिक्षण ं ज्ञान देने तक ही सीमित है। लेकिन वास्तविक रूप में शिक्षण का अर्थ बहुत व्यापक शिक्षण का अर्थ बालक को पाठ्य–वस्तु रटा देना ही नहीं वरन् उसका अध्ययन करना है। क ने अध्ययन कर लिया है यह तभी मान्य होगा जब बालक में अर्जित ज्ञान को जीवन की ध परिस्थितियों में स्वाधीनतापूर्वक करने की क्षमता उत्पन्न हो जायेगी। दूसरे शब्दों में ठित सामग्री के आधार पर अपने दैनिक व्यवहार में परिवर्तन तथा सुधार कर सके।

'शिक्षण' का अर्थ स्पष्ट करने के लिए विभिन्न शिक्षाविदों ने इसकी परिभाषायें :––

ग की परिभाषा––

1––बर्टन के अनुसार––"शिक्षण सीखने में उत्तेजना, पथ प्रदर्शन, निर्देश और प्रोत्साहन देता है।"

2––रास का कथन है––"मनुष्य के स्वाभाविक विकास को परिवर्तित करने वाली शक्ति शिक्षण है।"

3––एडम के विचार में––"शिक्षण तत्व ज्ञान का क्रियात्मक पक्ष है।"

4––डीवी के अनुसार––"परिवर्तित वातावरण के अनुरूप बालक के अनुभवों की वृद्धि ही शिक्षण का कार्य है।"

5––किल पैट्रिक का कथन है––"कई अनुभवों का सामूहिक परिणाम शिक्षण है।"

6––रायबर्न के अनुसार––"शिक्षण एक सम्बन्ध है जो बालक को अपनी समस्त शक्तियों का विकास करने में सहायता देता है।"

उपर्युक्त सभी परिभाषायें वर्तमान परिस्थितियों में शिक्षण के पूर्ण अर्थ को स्पष्ट नहीं हैं। मोकम और सिम्पसन की निम्नलिखित परिभाषा पूर्ण प्रतीत होती है।

"शिक्षण से तात्पर्य उस प्रक्रिया या साधन से है जिसके द्वारा समूह के अनुभवों सदस्य वय एवं शिशु सदस्यों को जीवन में समायोजन सम्बन्धी निर्देशन देते हैं।"

आज शिक्षण का उद्देश्य बालक को किसी विषय की प्रमुख बातें कंठस्थ कराना ही नहीं क उसे समाज एवं राष्ट्र का एक उत्तम उपयोगी नागरिक बनाना है ताकि वह अपने प्रजातांत्रिक, रपेक्ष, समाज के निर्माण के उत्तरदायित्व को भली प्रकार वहन कर सके। यह मानव की प्रक्रिया निर्बाध रूप से बचपन से यौवनावस्था तक निन्तर चलती रहनी चाहिये और र्य शिक्षण द्वारा ही सम्भव है।

शिक्षण मूलतः आदान–प्रदान की क्रिया है बालक की दृष्टि से ज्ञान प्राप्ति तथा शिक्षक की ज्ञान प्रदान करना इसके मूल में है। पठन–पाठन साथ–साथ चलने वाली प्रक्रियायें हैं। बच्चे के शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक एवं भावात्मक विकास के लिए शिक्षण करता है। स्वयं ही ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। शिक्षक एक 'त्रिभुजी प्रक्रिया' है। शिक्षक, शिक्षार्थी नों इस प्रक्रिया के तीन केन्द्र–बिन्दु हैं। शिक्षक विद्यालय में उपलब्ध विभिन्न कीतस ाध

सहायता से एवं विभिन्न युक्तियों द्वारा बालक के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन करने के लि शिक्षण करता है । शिक्षण की प्रक्रिया शिक्षक, शिष्य तथा विषय वस्तु के उचित समन्वय के अभ में अधूरी रह जाती है । अतः शिक्षक का यह उत्तरदायित्व है कि वह शिक्षार्थी के समक्ष वि तत्व का प्रस्तुतीकरण इस प्रकार करे कि शिष्य उसे आत्मसात कर सके तथा व्यवहारिक जीवन कर सके ।

शिक्षक शिक्षार्थी को किस प्रकार ज्ञान ग्रहण करने के लिये उत्तेजित करता है, बा किस प्रकार ज्ञान ग्रहण करने के लिए तैयार होता है यह शिक्षक की कुशलता पर निर्भर कर है यदि शिक्षक में कक्षा को व्यवस्थित रूप से चलाने, विचारों को आदान-प्रदान करने सहायक-सामग्री को उपयोग करने की क्षमता है तथा वह व्यवहार कुशल है तो उसका शिक्ष कार्य-सुचारू ढंग से हो सकता है ।

वास्तव में शिक्षण एक कला है--अन्य कलाओं की भांति इस कला में भी पारंगत होने लिये भी विशेष प्रकार के प्रयत्न करने की आवश्यकता है । शिक्षण में दक्षता अर्जित क सरल नहीं है । यह एक नैसर्गिक प्रतिभा है । जन्म जात प्रतिभा के कारण इसे क मान गया है । यह क्रिया प्रधान पढ़ना-पढ़ाना विषय है, ज्ञान प्रधान नहीं इसीलिये इसे क मान है ।

शिक्षण विज्ञान आधारित कला है--क्योंकि इसका सैद्धान्तिक पक्ष प्रयोग द्वारा प्रकट ह है अतः यह विज्ञान आधारित कला है ।

शिक्षण एक कौशल परक व्यवसाय है--शिक्षण का व्यवसाय अपनाते समय शिक्षण विज्ञ का अध्ययन आवश्यक है । शिक्षक बनने के पूर्व प्रशिक्षण विद्यालय में छात्राध्यापक के रूप शिक्षा के सिद्धान्त, बाल मनोविज्ञान, शिक्षण विधियों आदि का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है ।

शिक्षण का संकुचित अर्थ--शिक्षण वह प्रक्रिया है जो एक निश्चित उद्देश्य को ले निश्चित समय में, निश्चित स्थान पर (विद्यालय), निश्चित अनुभवी व्यक्तियों (अध्यापक) द्व दी जाती है ।

शिक्षण का व्यापक अर्थ--व्यापक अर्थ में शिक्षण वह प्रक्रिया है जिसमें किन्हीं भी साध द्वारा किसी भी समय किसी भी व्यक्ति द्वारा किसी भी ज्ञान को किसी भी माध्यम से दिया ज है । यह शिक्षण जीवन भर चलता है ।

शिक्षण के उद्देश्य--

रायबर्न महोदय के विचार में शिक्षण का मुख्य उद्देश्य शिक्षार्थी को इस योग्य बनाना कि वह एक सफल जीवन जी सके, वर्तमान समय में भी तथा अपने भविष्य में भी कोई व्य अकेला नहीं रह सकता उसे समाज में ही रहना है, अतः बालक का सामाजीकरण ही शिक्षण मुख्य उद्देश्य है ।शिक्षण द्वारा बालक के व्यक्तित्व का ऐसा विकास करना है कि वह सम का एक उपयोगी सदस्य बन सके ।

देश की सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों के अनुसार शिक्षण के उद्देश्यों में परिव होते रहते हैं । शिक्षा का उद्देश्य देश के विकास की अग्रगामी प्रक्रिया में योगदान करने में स उपयोगी तथा उत्पादक नागरिकों का निर्माण करना है । संक्षेप में शिक्षण के उद्देश्य निम्न हो सकते हैं:--

1--बौद्धिक प्रशिक्षण--जनतन्त्र शासन के सभी नागरिकों को स्वतन्त्रतापूर्वक बो लिखने व विचारों को अभिव्यक्त करने की स्वतन्त्रता होती है । अतः शिक्षण का प्रमुख उ बच्चों की योग्यता एवं शक्तियों को ऐसी दिशा में विकसित करना है जिससे वे स्वतन्त्र चिन्त तर्क एवं शोध की प्रवृत्ति की ओर अग्रसर हो सकें ।

2--शारीरिक स्वास्थ्य तथा रहन-सहन--शिक्षण का उद्देश्य बच्चों को स्वास्थ्य व वच्छ रखने में सक्षम बनाना भी है । पर्यावरण को स्वच्छता (पाठशाला, घर-पड़ोस) अथ वच्छ रहन-सहन की आदत डालना भी शिक्षण के उद्देश्य के अन्तर्गत आता है । बच्चों को स्वा भ्बन्धी सामान्य नियमों की जानकारी करा देने से वे बहुत से रोगों से बच सकेंगे ।

3--व्यक्तित्व का विकास एवं नेतृत्व--शिक्षण का तीसरा महत्वपूर्ण उद्देश्य बच्चों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना है। राष्ट्र की प्रगति जन शक्ति एवं सहयोग पर निर्भर करती है। अतः प्रत्येक नागरिक में नेतृत्व के गुण के विकास भी अपेक्षित है। अतः शिक्षण इस प्रकार किया जाय कि बच्चों में नेतृत्व की क्षमता विकसित हो सके।

4--स्वावलम्बन तथा व्यवसायिक दक्षता--बालक में आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनने की क्षमता विकसित करना भी शिक्षण का उद्देश्य है। बालक की रुचि, रुझान एवं बौद्धिक क्षमता के अनुरूप उसे व्यवसायिक प्रशिक्षण दिया जा सकता है। इससे बच्चों में स्वावलम्बन की प्रवृत्ति विकसित होगी तथा बेरोजगारी की समस्या का कुछ अंशों में समाधान हो सकेगा।

साहित्य, कला एवं विज्ञान के माध्यम से बालक की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास होता है किन्तु व्यवसायिक दक्षता जीविका अर्जन में सहायक होती है। स्वावलम्बी नागरिक किसी राष्ट्र की सम्पत्ति होते है।

शिक्षण का स्वरूप

प्रायः शिक्षण का अर्थ ज्ञान देना अथवा परामर्श देना समझा जाता है किन्तु यह शिक्षण का संकुचित अर्थ है। वास्तव में शिक्षण का अर्थ बहुत व्यापक है :

1--शिक्षण का अर्थ सम्बन्ध स्थापित करना है--शिक्षा के तीन प्रमुख केन्द्र-बिन्दु हैं--शिक्षक, शिक्षार्थी एवं विषय/शिक्षण इन तीनों के बीच एक सम्बन्ध स्थापित करने की प्रक्रिया है। जैसे "शिक्षक राम को इतिहास पढ़ाता है।" इस वाक्य में क्रिया शब्द 'पढ़ाता' है। यह शब्द तीनों संज्ञाओं शिक्षक-शिक्षार्थी (राम) एवं इतिहास (विषय) के बीच एक सम्बन्ध स्थापित करता है। इस प्रकार शिक्षण का प्रथम कार्य सम्बन्ध स्थापित करना है। शिक्षण एक प्रसक व्यक्ति है, जो बच्चे एवं विषय के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है।

उक्त तीनों बिन्दुओं में शिक्षक और शिक्षार्थी सजीव एवं सक्रिय बिन्दु हैं। शिक्षक शिक्षण समय अपनी सक्रियता एवं सजीवता दिखलाता है और शिक्षार्थी सीखने के समय।

यह सम्बन्ध प्रभावी हो इसके लिए शिक्षक को निम्न बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है--

(अ) बाल प्रकृति--बच्चों का शारीरिक एवं मानसिक विकास भिन्न-भिन्न होता है। बच्चे अलग-अलग घर से आते हैं और प्रत्येक घर का वातावरण अलग-अलग होता है। अतः शिक्षक को बाल प्रकृति का ज्ञान होना आवश्यक है। विशेष रूप से उन बालकों की प्रकृति का जिन्हें वह शिक्षा देने का प्रयत्न करता है।

(ब) स्वज्ञान--शिक्षक को स्वयं का भी पूर्ण ज्ञान होना चाहिए जिससे वह अपनी भावनाओं और बालकों के प्रति अपने व्यवहार तथा मनोवृत्ति को पूर्ण रूप से समझ सके ताकि वह अपने व्यक्तित्व और व्यवहार से बालकों को प्रभावित कर सके।

(स) शिक्षक का पाठ्य वस्तु एवं उसे कक्षा शिक्षण में प्रभावी विधि से प्रस्तुत करने का ज्ञान आवश्यक है। ताकि बालक उसे सुगमता से ग्रहण कर सकें।

2--शिक्षण का अर्थ है सूचना देना--शिक्षक बहुत सी नई-नई बातें बालकों को बताते है। जिनका ज्ञान बालक स्वयं नहीं प्राप्त कर सकते। प्रारम्भिक कक्षा में तो मुख्यतः शिक्षक बालकों को लगभग सभी बातें बताते हैं। यह कार्य कहानी एवं खेल के द्वारा प्रभावी किया जा सकता है।

3--शिक्षण का अर्थ सिखना है--बालक को सीखने के लिए उत्तेजित करना है अर्थात् उसको ज्ञान ग्रहण करने के लिए तैयार करना है। शिक्षण का मौलिक सिद्धान्त बालकों को स्वयं अपने लिए कार्य करने, सीखने तथा विषय से सम्बन्ध स्थापित करने में सहायता देना है। बर्टन महोदय के कथनानुसार "शिक्षण सीखने में उत्तेजना, पथ प्रदर्शन, निर्देश और प्रेरणा देता है।"

4—शिक्षण का अर्थ बालक को अपने वातावरण के अनुकूल बनने मिलता में सहायता देना है—शिक्षण द्वारा प्रतिकूल वातावरण से टक्कर लेने की क्षमता उत्पन्न की जाती है विद्यालय में बच्चे को अपनी अन्तर्निहित शक्तियों के विकास का अवसर मिलता है। तथा वह इस विकास के द्वारा वह अपने को वातावरण के अनुकूल बना लेता है। सिम्पसन महोदय के अनुसार "शिक्षण वह साधन है जिससे कि समाज अपने बालकों को एक चुने हुए वातावरण जिसमें कि उसको रहना है, शीघ्रातिशीघ्र उसके अनुकूल बनने की क्रिया में दीक्षित करना है।"

5—शिक्षण का अर्थ बालक को क्रियाशील रहने का अवसर देना है—क्रियाशीलता जन्मजात प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति के द्वारा बालक के व्यक्तित्व का विकास होता है। अतः शिक्षक को चाहिए कि वह बालकों की व्यक्तिगत भिन्नता को ध्यान में रखते हुए उनकी क्रियाशीलता की प्रवृत्ति को सन्तुष्टि का अवसर दे ताकि वे अपनी इस प्रवृत्ति का पूर्ण उपयोग कर सकें।

6—शिक्षण का अर्थ उत्प्रेरणा प्राप्त करना है—बालक को किसी काम करने को प्रोत्साहित करना अथवा प्रेरणा देना आज की शिक्षा प्रक्रिया की विशेषता है क्योंकि उत्प्रेरित बालक पाठ्यवस्तु को सरलता एवं शीघ्रता से ग्राह्य करता है। अतः किसी कार्य के पूर्व उपयुक्त तथा आवश्यक प्रेरणा प्राप्त करना शिक्षक का कार्य है। उत्प्रेरणा के लिए बालक की रुचि, रुझान का पता लगाना एवं उचित मार्ग दर्शन आवश्यकता है।

शिक्षण क्रिया में उचित मार्ग दर्शन बहुत महत्वपूर्ण है। इसके अभाव में शिक्षण में लगाया गया समय, सामग्री, शक्ति का अपव्यय होता है। सर्वप्रथम—उत्प्रेरणा ही इसकी मुख्य विधि है। दूसरे—शिक्षक स्वयं अपने व्यक्तित्व एवं व्यवहार से तथा उचित निर्देश द्वारा भी पथ प्रदर्शन कर सकता है। तीसरे—कक्षा में वाद-विवाद द्वारा भी यह कार्य किया जा सकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि शिक्षण कार्य में दो मूल क्रियायें निहित हैं : (1) शिक्षा सामग्री प्रस्तुत करना, (2) बालकों की मानसिक क्रियाशीलता का पथ प्रदर्शन।

7—शिक्षण का अर्थ बालकों के संवेगों को प्रशिक्षित करना है—भय, क्रोध, घृणा, हर्ष, उल्लास, प्रेम आदि संवेगों का उचित प्रशिक्षण आवश्यक है। हमारे कार्य, हमारी भावनाओं पर निर्भर करते हैं यदि हम चाहते हैं कि हमारे बालक ठीक-ठीक कार्य करें तो उनके संवेग भी ठीक होने चाहिए। उत्तम बातों के प्रति रुचि उत्पन्न करना शिक्षण का उद्देश्य है। यदि शिक्षण द्वारा हमारे संवेगों का प्रशिक्षण हो सका तो हमारा शिक्षण अधूरा रह जायगा। अतः शिक्षण द्वारा एक 'स्थिर एवं सन्तुलित संवेगात्मक जीवन' का विकास होना आवश्यक है। इसके लिए शिक्षक को आदर्श होना चाहिए तथा वह सहानुभूति, प्रेम, व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा बालकों का पथ प्रदर्शन कर सकता है।

8—शिक्षण तैयारी का साधन है—शिक्षक शिक्षण द्वारा भावी जीवन के लिए तैयार करता है शिक्षण बालक के शारीरिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक तथा संवेगात्मक विकास में योग देकर उसे भावी जीवन के लिए तैयार करता है। संक्षेप में शिक्षण बालक विषय तथा शिक्षक के बीच एक सम्बन्ध है जो बालक को अपनी समस्त शक्तियों के विकास में सहायता देता है, उसे भविष्य के लिए तैयार करता है।

प्रश्न

1—शिक्षण का अर्थ स्पष्ट करिये ?

2—शिक्षण के उद्देश्यों की स्पष्ट व्याख्या करिये ?

3—'शिक्षण एक कला है' इस कथन को उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करिये ?

4—शिक्षण के स्वरूप को सविस्तार समझाइए ?

शैक्षणिक उद्देश्यों की सम्प्राप्ति हेतु उपयुक्त अधिगम अनुभवों का आयोजन

सामान्य रूप से अधिगम का अर्थ ज्ञान, तथ्य एवं सूचनायें आदि एकत्र करना और आवश्यकता पड़ने पर सीखे हुये ज्ञान को दोहराना है। परन्तु शिक्षा का उद्देश्य बालक के व्यवहार में सुधार लाना है। इस दृष्टिकोण से व्यापक अर्थ में व्यवहार में परिवर्तन या सुधार को ही अधिगम या सीखना माना जाता है। शिक्षा तभी जीवनोपयोगी हो सकती है जब शिक्षार्थी में प्राप्त ज्ञान, कौशल एवं दक्षताओं में ऐसे व्यवहारगत परिवर्तन हों जो उसे एक सफल नागरिक जीवन यापन में और अपनी दैनिक समस्याओं के निराकरण में सहायता दे सके।

शिक्षार्थी के व्यवहार में परिवर्तन उसके अनुभवों पर निर्भर करता है। बिना अनुभव के कोई परिवर्तन आना सम्भव नहीं होगा। अनुभव उद्दीपन का कार्य करते हैं जिससे शिक्षार्थी के व्यवहार में क्रमशः परिवर्तन होता रहता है। प्रचलित प्रणाली में शिक्षक द्वारा अनुभव कक्षा वातावरण में ही प्रदान किया जाता है। शिक्षक व्याख्यान, वार्तालाप, प्रश्नोत्तर आदि विधि से कुछ सूचना ज्ञान बालकों को देता है, इसी को शिक्षण कहा जाता है। इस विधि में मुख्य केन्द्र अध्यापक है शिक्षण की प्रक्रिया में वही सक्रिय रहता है। बालक निष्क्रिय श्रोता के रूप में रहता है और इस प्रकार उसके ज्ञान का विकास हुआ या नहीं इसका मूल्यांकन नहीं किया जाता। इससे बालक का भावात्मक एवं मनोऐन्द्रिक पक्ष से सम्बन्धित विकास उपेक्षित रह जाता है।

अतः अधिगम (सीखने) को सार्थक बनाने के लिए आवश्यक है कि ऐसे अनुभवों की व्यवस्था की जाय जो बच्चों को प्रभावित कर सकें तथा उनकी मानसिक क्रियायें उत्तेजित हो सकें।

अधिगम अनुभव तभी प्रभावपूर्ण एवं सार्थक होगा जब वह वैयक्तिक, तीव्र, अद्वितीय एवं घनिष्ठ रूप से जुड़ा हो।

अधिगम अनुभवों की व्यवस्था करते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि उनसे अधिगम उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता मिले। अधिगम उद्देश्यों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है।

1—ज्ञानात्मक।

2—भावात्मक।

3—मनोऐन्द्रिक।

1—ज्ञानात्मक—इस उद्देश्य के अन्तर्गत नवीन ज्ञान, तथ्य, आंकड़ों, सूचनाओं, प्रतीकों, चिन्हों, परम्पराओं, क्रमबद्ध वर्गीकरण एवं सामान्यीकरण का ज्ञान आता है। ज्ञान के साथ ही बच्चों में प्रदत्त ज्ञान को समझने, उसके प्रयोग करने, विश्लेषण, संश्लेषण समझने, उनके प्रयोग करने की क्षमता का विकास भी सम्मिलित है।

2—भावात्मक—बालक के अभिरुचि, मनोवृत्ति, अभिवृत्ति, मूल्यों, भावनाओं आदि से सम्बद्ध होने के कारण ये चरित्र के अंग होते हैं। भावात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति कई स्तरों में प्राप्त करना, प्रतिक्रिया व्यक्त करना, महत्व देना संगठन एवं समय में होती है।

3—मनोऐन्द्रिक—इससे तात्पर्य उन उद्देश्यों से है जिनमें इन्द्रियों एवं मस्तिष्क का प्रयोग हो। शरीर संचालन या क्रियाओं को मनोऐन्द्रिक कहा जाता है। मनोऐन्द्रिक उद्देश्यों की प्राप्ति भी पांच स्तरों (अनुकरण, परिचालन, परिशुद्धता, प्रयत्न और अपना लेने) के द्वारा पूर्ण होती है।

उपर्युक्त उद्देश्यों के संक्षिप्त विवेचन के आधार पर ही शिक्षण अधिगम अनुभवों का आयोजन करना चाहिये।

अधिगम अनुभवों का आयोजन करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि बच्चे उनसे घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हों। अनुभव प्रदान करने के लिए कतिपय माध्यम निम्नवत् हो सकते हैं--

1--भाषण--यह पद्धति शिक्षण की पारस्परिक एवं बहु प्रचलित प्रणाली है, अध्यापक कक्षा में भाषण देते हैं और विद्यार्थी सुनते हैं इस प्रकार के शिक्षण में अध्यापक सक्रिय रहते हैं और बालक निष्क्रिय। ज्ञानात्मक उद्देश्यों के लिये यह पद्धति उपयुक्त मानी जाती है। यह पद्धति छोटी कक्षा में उपयोगी नहीं हो सकती है।

2--प्रश्नोत्तर--प्रश्नों द्वारा पाठ्य विषय को स्पष्ट करना बहुत पुराना है। यह शिक्षा प्रणाली वर्तमान समय में भी महत्वपूर्ण है। प्रश्नोत्तर के द्वारा बालकों को नवीन ज्ञान प्रदान किया जाता है। इसके द्वारा ही शिक्षक कक्षा में बच्चों के सम्पर्क में आता है। प्रश्नों से बच्चे सजग, तत्पर तथा अध्ययन में रुचि लेते हैं। उनमें तथ्यों को ग्रहण करने की क्षमता आती है।

3--कहानी कथन--बच्चे कहानी में रुचि लेते हैं। उन्हें जो भी बात कहानी के रूप में बताई जाती है उसे वे शीघ्रता एवं सरलता से आत्मसात् कर लेते हैं। कहानी के माध्यम से बच्चों को नवीन ज्ञान, तथ्य सूचनायें प्रदान की जा सकती हैं। मूल्यों एवं अभिवृत्तियों का विकास किया जा सकता है।

कहानी का चयन करते समय बच्चों की वय तथा रुचि का ध्यान रखना चाहिये। कहानी सुनाते समय शिक्षक को विभिन्न भावों तथा विचारों का ऐसे ढंग से वर्णन करना चाहिये जिससे कहानी रोचक एवं सजीव लगे। बीच-बीच में प्रश्न भी पूछे जाने चाहिये जिससे बच्चों के ज्ञान का मूल्यांकन भी हो सके। उन्हें कहानी सुनाने के लिए भी प्रेरित करना चाहिये।

4--पाठ्य पुस्तक--शिक्षण का मुख्य माध्यम पाठ्य-पुस्तकें हैं। इनके बिना शिक्षण कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता है। पाठ्य-पुस्तकें शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनों के लिए आवश्यक हैं।

शिक्षक को अपने विषय की यथार्थ परिभाषा, वस्तु तथा सीमा का ज्ञान होता है। वह अपनी पाठयोजना पुस्तक पर ही आधारित करता है।

पाठ्य पुस्तकों द्वारा बालकों को नया ज्ञान तथा अनेक सूचनायें एक ही स्थान पर एकत्रित मिल जाती हैं। शिक्षक के प्रभाव में एवं वैयक्तिक शिक्षण में इनका स्थान महत्वपूर्ण है।

5--स्वाध्याय एवं निर्देशित अध्ययन--स्वाध्याय एवं निर्देशित अध्ययन द्वारा बच्चे स्वयं अपनी जानकारी बढ़ाते हैं। अपनी जिज्ञासा शांत करते हैं। यह पद्धति ऊंची कक्षाओं के लिए उपयोगी होती है। छोटी वय के बच्चों को निर्देशित अध्ययन कराया जा सकता है। वे ज्ञान प्राप्ति के स्रोत का अध्ययन करते हैं। अध्यापक मूल्यांकन करता है।

6--विचार-विमर्श--किसी भी समस्या को लेकर पारस्परिक विचार-विमर्श किया जाता है। बच्चों को सोचने, तर्क करने, अपना पक्ष प्रस्तुत करने तथा उचित विकास करने के लिए यह पद्धति अपनाई जाती है। बच्चे अपने स्वयं के स्वतंत्र विचार प्रकट कर सकते हैं। उनको सुव्यवस्थित तथा प्रसंग से सम्बन्धित बनाने के लिए शिक्षक निर्देशन कर सकता है।

7--परियोजनायें--प्रोजेक्ट-प्रणाली अध्यापन की एक ऐसी प्रणाली है जिसमें पाठ्यक्रम, पाठ्यवस्तु एवं विद्यालय व्यवस्था सभी बालक के दृष्टिबिन्दु से देखा जाता है। यह विधि बालक के अपने प्रयोजन को बहुत अधिक महत्व देती है और चाहती है कि वह स्वयं ही सोचे कि उसे क्या पढ़ना है इसका निर्णय करे। इससे ज्ञानात्मक, भावात्मक, मनोऐन्द्रिक उद्देश्यों की प्राप्ति सहज और स्वाभाविक रूप से हो सकती है। परियोजना एक समूह या पूरी कक्षा या पूरे विद्यालय की हो सकती है। परियोजना का चयन करते समय बच्चों की रुचि, योग्यता, क्षमता एवं उपलब्ध साधनों का ध्यान रखना चाहिये।

8—प्रयोगात्मक कार्य—मनोऐन्द्रिक कौशलों के विकास के लिए प्रदर्शन की पद्धति विशेष उपयोगी होती है। विज्ञान के प्रयोग, संगीत, चित्रकला, व्यायाम, रेखांकन एवं शिल्पों आदि के लिए इस पद्धति का प्रयोग किया जाता है। कक्षा में बच्चों के सामने जब अध्यापक द्वारा कोई प्रदर्शन किया जाता है तो बच्चे बड़े ध्यान से देखते हैं तथा उसका हू बहू अनुकरण करने का प्रयास करते हैं। अच्छे प्रदर्शन से बच्चों को अच्छा कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। प्रदर्शन दक्ष, कुशल एवं जानकार व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिये अन्यथा बच्चों में गलत आदतें पड़ जाने का डर रहता है।

9—सर्वेक्षण पर्यवेक्षण—अधिगम अनुभव को यथार्थ एवं उपयोगी बनाने के लिए सर्वेक्षण या पर्यवेक्षण एक प्रभावी माध्यम है। इसके अन्तर्गत बच्चों को किसी स्थल या स्थिति विशेष का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए सर्वेक्षण कराया जाता है। शिक्षक का कर्त्तव्य है कि सर्वेक्षण में बच्चों को ले जाने के पूर्व उसका नियोजन कर लें तथा बच्चों को भी पहले से बता दें कि उन्हें सर्वेक्षण करते समय किन-किन बातों पर ध्यान देना होगा एवं किन-किन पक्षों से सम्बन्धित सूचनाओं को संकलित करना होगा। इनके लिए उचित स्रोत कौन-कौन होंगे। उन्हें किस प्रकार लिपिबद्ध किया जाय। इस विषय में भी अध्यापक को निर्देश देने होंगे।

10—पर्यटन भ्रमण—प्रत्यक्ष अनुभव प्रदान करने के लिए भ्रमण एवं पर्यटन भी बहुत उपयोगी होते हैं। पर्यटन में बच्चे नई-नई वस्तुओं को देखते हैं। नई परिस्थितियों का सामना करते हैं। इनके द्वारा बच्चे नवीन ज्ञान प्राप्त करते हैं। पर्यटन के लिए पूर्व नियोजन आवश्यक है।

11—सह पाठ्य क्रमीय क्रिया कलाप—सह पाठ्य-क्रमीय क्रिया-कलाप, प्रहसन, वाद-विवाद, अन्त्याक्षरी, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक प्रतियोगितायें, प्रदर्शनी, आदि का उपयोग समृद्ध अधिगम अनुभव प्रदान करने के लिए किया जा सकता है। सह पाठ्यक्रमीय क्रिया-कलापों के द्वारा अभिवृत्तियों के विकास, संचालन उत्तरदायित्व आदि भावनाओं के विकास में सहायता मिलती है।

12—शैक्षिक उपकरण—शैक्षिक उपकरण, मानचित्र, रेखाचित्र, चलचित्र, रेडियो, टेली-विजन, स्लाइड आदि उपकरणों से अधिगम अनुभवों को जीवन्त एवं रोचक बनाया जा सकता है।

इस प्रकार अधिगम (सीखना) अनुभव प्रदान करने के लिए अनेक माध्यम एवं साधन हैं। एक अच्छे शिक्षक को अपने अधिगम उद्देश्यों को पूरा करने के लिये और प्रभावी बनाने के लिए उपयुक्त अधिगम अनुभवों का आयोजन करना चाहिये।

प्रश्न

1—अधिगम अनुभव का अर्थ स्पष्ट करें।

2—सार्थक एवं प्रभावपूर्ण अधिगम प्रदान करने के लिए शिक्षक को अपने अध्यापन में किन बातों का ध्यान रखना चाहिये।

3—निम्न माध्यमों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें :—

(क) भाषण।

(ख) पाठ्य पुस्तक।

(ग) पर्यटन।

शिक्षण सिद्धान्त

(Principal of Teaching)

शिक्षण स्वरूप पर विचार करने के उपरान्त यह विचार करना है कि अध्यापन के समय शिक्षण विधियां किन-किन सामान्य सिद्धान्तों पर आधारित होनी चाहिये। शिक्षण का प्रकार बहुत कुछ शिक्षार्थी, शिक्षण सामग्री एवं वातावरण पर निर्भर करता है। विभिन्न वय वर्ग के बालकों को विभिन्न विषय पढ़ाने के लिए शिक्षण विधि में हेरफेर होना अनिवार्य है। आधुनिक मनोविज्ञान में होने वाले शोधों एवं प्रयोगों के आधार पर शिक्षण के कुछ सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं :

1—कार्य शीलता का सिद्धान्त—बालक स्वभाव से क्रियाशील होते हैं। वे प्रतिक्षण किसी न किसी प्रकार की क्रिया करते हैं। वे क्रिया द्वारा अधिक सुगमता से सीखते हैं। सीखने के लिए शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार की क्रियाशीलता आवश्यक है। उदाहरण के लिए ऐतिहासिक तथ्यों को नाटक के द्वारा भूगोल को पर्यटन द्वारा पढ़ाया जा सकता है। स्कूल में सभा आदि कराने से बच्चों में नेतृत्व की भावना विकसित होती है। छोटी कक्षा में शारीरिक क्रियायें तथा बड़ी कक्षा में मानसिक क्रियायें करायी जायं। शिक्षण की कुछ प्रणालियां जैसे मान्टेसरी, किन्डर गार्टेन, प्रोजेक्ट प्रणाली आदि इसी सिद्धान्त पर आधारित हैं।

2—जीवन से सम्बन्ध जोड़ने का सिद्धान्त—इस सिद्धान्त का तात्पर्य पाठ्य विषय का बालक के वास्तविक जीवन से सम्बन्ध स्थापित करने से है क्योंकि बालक उन विषयों को सीखने में कोई रुचि नहीं लेते जिनका उनके जीवन से सम्बन्ध नहीं है, परन्तु जो विषय उनके जीवन से सम्बन्धित हैं उन्हें सरलता से सीख लेते हैं। अतः शिक्षण में यह ध्यान रखा जाय कि बालक को नया ज्ञान उनके पूर्व ज्ञान के आधार पर दें। इस प्रकार सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर नया ज्ञान बालक के जीवन का एक अंग बन जाता है, यह सम्बन्ध केवल सैद्धान्तिक ज्ञान से ही नहीं बल्कि क्रियात्मकता से भी स्थापित होना चाहिये।

3—रुचि का सिद्धान्त—मनोविज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि रुचि का क्रियात्मक रूप ही अवधान है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए बालक का विषय की ओर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है। परन्तु यह तभी सम्भव है जब बालक में रुचि जागृत हो जाय इसके लिए पाठ्य विषय को बालक के जीवन-क्रियाओं तथा उद्देश्यों से सम्बद्ध करना चाहिए। शिक्षण विधि तथा उपकरण मनोवैज्ञानिक होने चाहिये।

4—निश्चित उद्देश्य का सिद्धान्त—शिक्षक को पढ़ाने वाले प्रत्येक पाठ का निश्चित उद्देश्य भी ज्ञात होना आवश्यक है। तभी शिक्षक उसके अनुरूप शिक्षण विधि अपनायेगा। उदाहरण के लिए एक पद्य का पाठ पढ़ाने में यदि शिक्षण का उद्देश्य रसास्वादन कराना है तो उसकी शिक्षण विधि भिन्न होगी। कविता पढ़ने के कौशल का विकास करना है तो उसकी विधि अलग होगी। बालक को भी प्रत्येक पाठ का अध्ययन करते समय उद्देश्य का ज्ञान रखना होगा। इससे शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों की पाठ में रुचि बनी रहती है।

5—चयन का सिद्धान्त—शिक्षक को जिन तथ्यों को बताना है उन्हें चुन लेना चाहिये इससे पाठ का विकास सरल हो जाता है। विद्यार्थी भी आसानी से ज्ञान अर्जित कर लेता है उचित चयन की योग्यता पर ही शिक्षक की सफलता निर्भर है।

6—विभाजन का सिद्धान्त—पाठ्य सामग्री को इस प्रकार विभाजित कर लें कि शिक्षण के समय एक सोपान स्वतः दूसरे सोपान पर पहुंचा दे, इससे बालक पाठ को सरलता से ग्रहण कर लेते हैं। अतः सफल शिक्षण के लिए पाठ्य विषय का पदों में विभाजन कर लेना आवश्यक है।

7--समन्वय का सिद्धान्त--शिक्षा विदों का मत है कि किसी एक विषय को पढ़ाते समय बालकों का ध्यान उन विषयों की ओर किया जाय जो उस विषय से सम्बन्धित हैं तो विषय सरल, स्पष्ट और बोधगम्य हो जाता है। विषयों को एक दूसरे से सम्बन्धित करके पढ़ाने को ही समन्वय कहा जाता है।

8--आवृत्ति का सिद्धान्त--पाठ के मुख्य तथ्यों का बार-बार दोहराना ही आवृत्ति है। किसी बात को बार-बार दोहराने से विद्यार्थी आत्मसात् कर लेता है और यह उनका स्थायी ज्ञान बन जाता है। प्रारम्भिक कक्षाओं में विषय वस्तु को आत्मसात करने हेतु शिक्षक मुख्य रूप से इसी सिद्धान्त को अपनाते हैं। पाठ जितना कठिन होगा उसमें अभ्यास तथा दोहराने की मात्रा उतनी ही अधिक होगी। कुछ विषयों में इस सिद्धान्त का उपयोग अत्यन्त आवश्यक है जैसे शिल्प, गणित आदि।

इस प्रकार हम देखते हैं शिक्षण के कुछ सामान्य सिद्धान्त हैं। सफल शिक्षण के लिये इनका प्रयोग करना आवश्यक है, इसके अतिरिक्त अच्छे शिक्षण के भी कुछ सिद्धान्त हैं जो निम्नवत् ह :--

अच्छे शिक्षण के सिद्धान्त--एक शिक्षक को जो शिक्षण कला में पारंगत होना चाहता है, अच्छे शिक्षण के मूल सिद्धान्तों पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

1--अच्छा शिक्षण वह है जो सीखने में उचित पथ प्रदर्शन कर सके--शिक्षण से तात्पर्य है पथ प्रदर्शन। अच्छा शिक्षण वही है जो बालक को सीखने में उचित मार्ग दिखाये। वह उसे अनुसंधान करने, तर्क तथा अनुभवों से शिक्षा ग्रहण करने की प्रेरणा दे।

2--अच्छा शिक्षण दया तथा सहानुभूति के साथ किया जाता है। बालक को त्रुटियों को सुधारना अध्यापक का कर्त्तव्य है। यह कार्य सहानुभूति के साथ करना चाहिये।

3--अच्छा शिक्षण अच्छी योजना पर निर्भर है--शिक्षण की यह योजना लचीली होनी चाहिए। बालकों को क्या पढ़ाना है, कैसे पढ़ाना है तथा कब पढ़ाया जाय यह सब पूर्व नियोजित होना चाहिए।

4--अच्छा शिक्षण निर्देशात्मक होता है--अच्छे शिक्षण में बालक को निर्देश दिया जाता है न कि आदेश। कक्षा का वातावरण निर्देशात्मक होना चाहिए। वहां कठोर अनुशासन अच्छा नहीं समझा जाता।

5--अच्छा शिक्षण जनतंत्रात्मक होता है--शिक्षण में जाति, धर्म, वंश, लिंग, धनी, निर्धन आदि का कोई भेद भाव न दिया जाय। सभी बालक, बालिकाओं को शिक्षा ग्रहण करने के समान अवसर प्राप्त हो। शिक्षक का दृष्टिकोण भी जनतंत्रात्मक होना चाहिए तभी छात्रों में जनतंत्रात्मक मनोवृत्ति विकसित होगी।

6--अच्छा शिक्षण प्रेरणात्मक होता है--अध्यापक जब अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से बालकों को अच्छे व्यवहार के लिए प्रेरणा देता है तभी अच्छा शिक्षण होता है।

7--अच्छे शिक्षण में बालक के पूर्व अनुभवों को ध्यान में रखा जाता है। शिक्षण तभी प्रभावी होता है जब शिक्षक नया ज्ञान बालक के पूर्व ज्ञान, रुचि, अनुभव आदि से सम्बद्ध करके देता है।

8--अच्छे शिक्षण में अध्यापक अपने पूर्व ज्ञान से लाभान्वित होता है--अच्छे शिक्षण के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक अपने पूर्ण अनुभवों से सीखें और शिक्षण विधि में सुधार करें।

9--अच्छा शिक्षण प्रगतिशील होता है--बालक की व्यक्तिगत प्रगति तथा सामाजिक उन्नति ही अच्छे शिक्षण की परिचायक है। अच्छा शिक्षण वह है जिसमें बालक की रुचियों, आदतों योग्यताओं आदि में कुशलता आये।

10—अच्छे शिक्षण में बालकों की कठिनाइयों का निदान किया जाता है ।

11—अच्छा शिक्षण उपचारपूर्ण होता है—बालक की शैक्षणिक कमजोरियों को दूर करता तथा उसके लिए उपचारात्मक कक्षायें लेकर विषयगत कमजोरियों को दूर करना अच्छे शिक्षण के लिये आवश्यक है ।

12—अच्छे शिक्षण में बालकों के ज्ञान का मूल्यांकन ठीक ढंग से किया जाता है—बालक के अर्जित ज्ञान का समय-समय पर मूल्यांकन होना भी आवश्यक है । यह मूल्यांकन नवीन वैज्ञानिक प्रणाली (वस्तु निष्ठ) द्वारा होना चाहिए ।

13—अच्छा शिक्षण बालक में आत्मविश्वास उत्पन्न करता है । अच्छा शिक्षण वह है जिसमें बालक को स्वतंत्र रूप से चिन्तन करने, तर्क करने तथा समस्याओं के हल निकालने की क्षमता आ जाये ।

प्रश्न

1—शिक्षण के सामान्य सूत्रों का शिक्षण में क्या महत्व है ? चयन तथा आवृत्ति के सिद्धान्तों को उदाहरण देकर स्पष्ट करिये ।

2— शिक्षा में 'क्रियाशीलता' का क्या महत्व है ? क्रियाशीलता के सिद्धान्त की विवेचना करिये ।

3—निम्न में से किन्हीं तीन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें :—

(क) रुचि का सिद्धान्त ।

(ख) जीवन से सम्बन्ध जोड़ने का सिद्धान्त ।

(ग) निश्चित उद्देश्य का सिद्धान्त ।

(घ) विभाजन का सिद्धान्त ।

4—'अच्छे शिक्षण के आवश्यक तत्व' पर एक निबन्ध लिखें ।

पाठ–दो

शिक्षण के सामान्य सूत्र

प्रभावी शिक्षण के लिये शिक्षक को अपने विषय का पूर्ण ज्ञान होना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि अपने ज्ञान को बच्चों तक पहुंचाने की कला में भी दक्ष होना आवश्यक है । ज्ञान देने के लिए शिक्षक की आवाज सशक्त एवं संतुलित होनी चाहिए । शिक्षक ज्ञान देने की कला से भी अवगत हो । जिसके द्वारा मूर्ख एवं चतुर दोनों ही प्रकार के विद्यार्थी ज्ञान ग्रहण कर सकें। अन्य शब्दों में शिक्षक शिक्षण का आरम्भ कहां से करे और उसका पाठ किस दिशा में प्रगति करे जिससे कि उचित स्थानों पर विश्राम लेता हुआ वह मध्यवर्ती मार्ग को पूरा कर सके । इसलिए शिक्षा शास्त्रियों ने कुछ सामान्य सूत्रों का निर्धारण किया है । प्रमुख शिक्षण निम्नवत् हैं :—

(1) सरल से जटिल की ओर ।

(2) ज्ञात से अज्ञात की ओर ।

(3) स्थूल से सूक्ष्म की ओर ।

(4) मूर्त से अमूर्त की ओर ।

(5) पूर्ण से अंश की ओर ।

(6) विश्लेषण से संश्लेषण की ओर ।

(7) मनोवैज्ञानिक क्रम से तर्कात्मक क्रम की ओर ।

1·—सरल से जटिल की ओर—इसका तात्पर्य यह है कि बालक को पहले पाठ्यवस्तु का सरल रूप बताया जाय फिर धीरे–धीरे जटिल अंश की ओर बढ़ें । क्योंकि यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि बालक किसी सरल बात को समझने के पश्चात् ही जटिल बात समझ सकता है । उदाहरण—उदाहरण के लिए छोटी कक्षा में एतिहासिक महापुरुषों की जीवनी कहानी के रूप में पढ़ते हैं । आगे की कक्षाओं में इतिहास क्रम में उनको शासन व्यवस्था, युद्ध आदि का वर्णन आदि कर सकते हैं ।

2—ज्ञात से अज्ञात की ओर—मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि बालक अपने पूर्व ज्ञान के आधार पर ही नवीन ज्ञान अर्जित करता है । इस प्रकार बालक नवीन ज्ञान सुगमता से आत्मसात कर लेता है । शिक्षक को चाहिए कि वह विषय को पढ़ाने के पहले उस विषय से सम्बन्धित बालक के पूर्व ज्ञान को मालूम करे तथा उसी के आधार पर नवीन ज्ञान उपस्थित करे । इससे नवीन ज्ञान अर्जित करने में रुचि तथा उत्साह जागृत होता है ।

उदाहरणार्थ—गणित में गुणा, भाग पढ़ाते समय बच्चे के पूर्व अर्जित ज्ञान पहाड़े को आधार बनाकर गुणा करना सिखाया जाय । ऊंची कक्षाओं में तुलसीदास की जीवनी पढ़ाने के पूर्व घर–घर में पढ़ी जाने वाली रामचरित मानस (रामायण) से पाठ प्रारम्भ किया जाय ।

3—स्थूल से सूक्ष्म की ओर—बालक सर्व प्रथम स्थूल वस्तु का ज्ञान प्राप्त करता है क्योंकि वह उस वस्तु को प्रत्यक्ष देख सकता है, छू सकता है और समझ सकता है । फिर वय तथा बुद्धि के विकास के साथ–साथ धीरे–धीरे इसमें सूक्ष्म को समझने की शक्ति आ जाती है और वह सूक्ष्म बातों को भी समझने लगता है । अतः शिक्षक को चाहिए कि वह बालक के परिवेश से सम्बन्धित वस्तु या घटना से शिक्षण प्रारम्भ करे । उस वर्णन के बाद सूक्ष्म बातों या तथ्यों का ज्ञान दे उससे बालक की रुचि जागृत होगी और अध्ययन में उसका मन लगेगा ।

उदाहरण के लिए कक्षा 1 में जोड़ सिखाने के लिए गोलियों-तीलियों या खिलौनों को अलग-अलग रखकर जोड़ना सिखाया जाय तो वह सुगमता से सीख लेगा। बाद में वस्तुओं के के अभाव में भी सूक्ष्म प्रक्रिया से जोड़ सकता है।

4--मूर्त से अमूर्त की ओर--यह सिद्धान्त बहुत कुछ 'स्थूल से सूक्ष्म की ओर' सिद्धान्त सेही मिलता है। शिक्षण में अध्यापक का उद्देश्य बालक में ऐसी क्षमता का विकास करना है कि वह अमूर्त विचारों और भावों का चिन्तन, मनन कर सके। किन्तु भावों का चिन्तन और मनन बहुत सूक्ष्म मानसिक प्रक्रिया है। अतः अध्यापक को मूर्त से आरम्भ करके अमूर्त की ओर बढ़ना चाहिए। मूर्त से अभिप्राय उस वस्तु से है जिसे देखा और छुआ जा सके। अमूर्त वह विचार है जिसे केवल अनुभव किया जा सके या भाव। किन्तु यह विचार या भाव अमूर्त होते हुए भी मूर्त वस्तुओं के विषय में होने वाली मानसिक प्रक्रिया के ही परिणाम होते हैं। अतः अध्यापक को मूर्त से अमूर्त की ओर बढ़ना चाहिए। इस सम्बन्ध में हर्बर्ट स्पेन्सर का विचार है कि हमारे पाठ का आरम्भ मूर्त से तथा उसकी समाप्ति अमूर्त में होना चाहिए।

उदाहरणार्थ--भूगोल पढ़ाने में स्थानीय भूगोल से प्रारम्भ किया जाय। आगे चल कर अन्य प्रदेशों का भूगोल पढ़ाया जाय तो अधिक बचिकर, ग्राह्य एवं सुगम होगा।

5--पूर्ण से अंश की ओर--इसके अनुसार बालक को पहले सम्पूर्ण वस्तु का ज्ञान होता है उसके अंशों का नहीं। बालक के मन पर किसी वस्तु के पूर्ण का चित्र एक साथ ही पड़ता है फिर उसका ध्यान अंगों की ओर आकर्षित होता है। इसलिए अध्यापक को भी इसी स्वाभाविक क्रिया का अनुकरण करना उचित होगा।

उदाहरण के लिए जब हम 'पेड़' कहते हैं तो बालक के मन मस्तिष्क पर सम्पूर्ण पेड़ का चित्र उपस्थित हो जाता है। वह सम्पूर्ण पेड़ के विषय में सोचता है। पेड़ के अलग अलग भागों पर बालक का ध्यान नहीं जाता। अतः अध्यापन के समय अध्यापक को चाहिए कि बच्चे जिस वस्तु को पूर्ण इकाई के रूप में जानते हैं उसे पूर्व ज्ञान के द्वारा स्मरण कराकर तब उसके अंश का ज्ञान दिया जाय।

उदाहरण--के लिए हिन्दी में पहले वाक्यों का ज्ञान कराया जाय फिर अक्षरों का। व्याकरण पढ़ाने में वाक्य पढ़ाकर उसमें निहित कर्ता, कर्म, क्रिया आदि का ज्ञान कराया जाय। विज्ञान पढ़ाने में किसी उपकरण के सम्पूर्ण रूप का ज्ञान कराकर उसके अंगों का ज्ञान कराया जाता है। इस सूत्र के प्रयोग में अध्यापक को यह सावधानी अवश्य बरतनी चाहिए कि उसे पूर्ण से अंशों की ओर चल कर पुनः अंशों को मिला कर पूर्ण का निर्माण कर देना चाहिए ताकि बालक पूर्ण प्रक्रिया को भली प्रकार समझ सके।

6--विश्लेषण से संश्लेषण की ओर--

यह सूत्र 'पूर्ण से अंश की ओर' सूत्र का विरोधी प्रतीत होता है। परन्तु है वस्तुतः उसका पूरक। आरम्भ में बच्चे का ज्ञान अपूर्ण अनिश्चित तथा अव्यवस्थित होता है उसके ज्ञान को पूर्ण निश्चित तथा व्यवस्थित करना शिक्षक का कर्तव्य है। शिक्षक विश्लेषण प्रणाली द्वारा इस कार्य को पूरा करता है। किसी भी वस्तु या तथ्य से ज्ञान के लिये उसके प्रत्यक अंग की व्याख्या की जानी आवश्यक है फिर उसके संश्लिष्ट रूप को प्रस्तुत किया जा सकता है।

इस सूत्र का संकेत यह है कि पाठ का आरम्भ विश्लेषण से हो परन्तु उसकी समाप्ति संश्लेषण में होनी चाहिए। संश्लेषण द्वारा वस्तु अपने उसी मूल रूप में आ जाती है। जिसको लेकर विश्लेषण का आरम्भ हुआ था। इस सूत्र का प्रयोग केवल उन्हीं विषयों के शिक्षण में किया जाता है जो विभिन्न भागों में विभाजित किये जा सकते हैं जैसे--भूगोल, रेखागणित, विज्ञान आदि। डा० लारी के अनुसार 'विश्लेषण, संश्लेषण विधि ही शिक्षण की उत्तम विधि है।

7--मनोवैज्ञानिक क्रम से तर्कात्मक क्रम की ओर बालक को शिक्षा देने के दो क्रम हैं :—

1--मनोवैज्ञानिक ।

2--तर्कात्मक ।

मनोवैज्ञानिक क्रम में बालकों की रुचि जिज्ञासा, उत्साह, आयु, ग्रहण शक्ति के अनुसार पाठ्य-वस्तु प्रस्तुत की जाती है इससे बच्चे जल्दी सीख लेते हैं । मनोवैज्ञानिक क्रम से शिक्षण विषय वस्तु के स्वाभाविक विकास क्रम की ओर अग्रसर होता है । तर्कात्मक क्रम में बालकों की रुचि जिज्ञासा तथा ग्रहण शक्ति की अवहेलना करके शिक्षक विषय वस्तु को तर्कात्मक क्रम से प्रस्तुत कर देता है , किन्तु शिक्षा का क्रम मनोवैज्ञानिक से तर्कात्मक की ओर अधिक उत्तम तथा उपयोगी है । इसमें बच्चों को ज्ञान ग्रहण करने में सुविधा होगी साथ ही उसकी रुचि तथा ध्यान भी बना रहेगा ।

उदाहरण— छोटी कक्षाओं में मनोवैज्ञानिक क्रम के अनुसार भाषा की शिक्षा वाक्य से प्रारम्भ करेंगे शब्द या अक्षर से नहीं । ज्यों-ज्यों बालक ऊंची कक्षा में पहुंचता जाय त्यों-त्यों शिक्षक को तर्कात्मक क्रम का प्रयोग करते जाना चाहिए ।

इतिहास शिक्षण में विषय ज्ञान तार्किक क्रम से ही देना उपयुक्त है किन्तु ऐतिहासिक घटनाओं का शिक्षण वर्तमान सामाजिक जीवन की आवश्यकता तथा वातावरण पर क्रमायोजित की जाती है जो कि मनोवैज्ञानिक है ।

शिक्षण में दोनों ही क्रम उपयोगी हैं । तर्कात्मक क्रम अमनोवैज्ञानिक नहीं है किन्तु प्रारम्भिक स्थिति में बालक की रुचि-जिज्ञासा तथा आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए मनोवैज्ञानिक क्रम ही उपयुक्त है । धीरे-धीरे बालक की ज्ञान वृद्धि के साथ तार्किक क्रम की ओर अग्रसर होना उपयुक्त है ।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए विभिन्न शिक्षण सूत्रों के अनुसार शिक्षण करना आवश्यक है ।

प्रश्न

1--शिक्षण में शिक्षण सूत्रों का क्या महत्व है ? 'ज्ञात से अज्ञात' की ओर, तथा मूर्त से अमूर्त' की ओर इन सूत्रों से आप क्या समझते है ?

2--विश्लेषण से संश्लेषण की ओर' एवं 'पूर्ण से अंश की ओर' सूत्रों में अन्तर स्पष्ट कीजिए ।

3--शिक्षण के सामान्य सूत्रों का वर्णन करें ।

4--प्रारम्भिक कक्षाओं में गणित शिक्षण के लिए आप किस सूत्र को सबसे अधिक उपयुक्त समझते है और क्यों ?

इकाई योजना

उप इकाई—

विषय वस्तु का इकाइयों एवं उप इकाइयों में विभाजन एवं शैक्षणिक समायोजन ।

इकाई का अर्थ—

मनोविज्ञान के आधार पर यह निश्चय किया गया है कि ज्ञान एक इकाई है और बालकों के सम्मुख ज्ञान को समग्र रूप अथवा इकाई के रूप में प्रस्तुत करना चाहिये । दूसरे शब्दों में बालकों को ज्ञान खण्डों में नहीं वरन् पूर्ण रूप में देना चाहिए । इस विचार से प्रभावित होकर ही इकाई योजना का निर्माण हुआ । इकाई प्रतिपादन अमेरिका के शिक्षा शास्त्री श्री मारीसन महोदय ने किया ।

इकाई का अर्थ स्पष्ट करते हुए बोसिंग (Bossing) महोदय ने कहा है कि "इकाई अर्थपूर्ण एवं एक दूसरे से सम्बन्धित क्रियाओं की एक व्यापक श्रृंखला है जो विकसित होने पर बालकों के उद्देश्यों की पूर्ति करती है और उन्हें महत्वपूर्ण शैक्षिक अनुभव प्रदान करती है जिसके फलस्वरूप उनके व्यवहार में वाँछित परिवर्तन होता है ।" स्पष्ट है कि इकाई का तात्पर्य उस ज्ञान, क्रिया एवं अनुभव के संगठित रूप से है जो परस्पर सम्बन्धित होते हैं ।

इकाई के प्रकार—

अमरीकन शिक्षा शास्त्री कासबैल तथा कैम्बेल महोदय ने इकाई के दो प्रकार बतलाये हैं :—

(क) पाठ्य विषय से सम्बन्धित इकाइयाँ ।

(ख) अनुभव से सम्बन्धित इकाइयाँ ।

पाठ्य विषय से सम्बन्धित इकाइयां—

ये इकाइयां पाठ्य वस्तु के किसी एक अंश के एक तर्कपूर्ण संगठन से बनती हैं इन इकाइयों को निम्न तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है ।

(अ) प्रकरण पर आधारित इकाई

ये इकाइयां पाठ्य वस्तु के प्रकरणों के योग से बनती हैं जैसे—बाबर का भारत पर आक्रमण । इस इकाई में निम्न प्रकरण सम्मिलित किये जा सकते हैं :—

(i) बाबर का प्रारम्भिक जीवन तथा अभिलाषा ।

(ii) भारत की दशा तथा आक्रमण के लिए निमंत्रण ।

(iii) पानीपत का युद्ध ।

(ब) नियम पर आधारित इकाई—

ये इकाइयां किसी नियम सूत्र या सिद्धांत पर आधारित होती हैं । पहले छात्राओं के सहयोग से नियम या सिद्धांत निकाला जाता है और फिर सम्पूर्ण ज्ञान इसी सिद्धांत को केन्द्र मान कर किया जाता है । यह इकाईयाँ विज्ञान, गणित तथा व्याकरण के शिक्षण में उपयोगी होती हैं ।

(स) वातावरण पर आधारित इकाई

यह इकाइयां भौतिक या सामाजिक वातावरण, सामान्य संस्कृति, आचरण कला या विज्ञान कला के एक प्रमुख अंग पर आधारित होती हैं । इन इकाइयो से बालकों को वास्तविक एवं जीवन सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त होता हैं अतः यह जीवित इकाईयां कहलाती हैं ।

(2) अनुभव से सम्बन्धित इकाईयां

अनुभव इकाइयों को निम्न तीन भागों में बांटा जा सकता हैं ।

(अ) रुचि पर आधारित इकाई

रुचियों के अनुकूल क्रियायों का चयन किया जाता जाता हैं और क्रियायों के माध्यम के ज्ञान दिया जाता हैं । क्रियाओं द्वारा बालकों को ज्ञान और मनोरंजन दोनों ही प्राप्त होते हैं ।

(ब) उद्देश्य पर आधारित इकाई--

उद्देश्य प्राप्ति के लिए जिस ज्ञान क्रिया एवं अनुभव की आवश्यकता होती है, उन्हें ही इकाई का अंग बनाया जाता हैं । इन इकाइयों का संगठन कठिन हैं ।

(स) आवश्यकता पर आधारित इकाई--

ये वो इकइयां हैं, जिनके द्वारा बालकों की भौतिक, नैतिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने का प्रयास किया जाता हैं । इनकी पूर्ति हेतु जो ज्ञान एवं अनुभव चाहिए, उनके संगठन से इन इकाइयों का निर्माण होता हैं ।

इकाई योजना के सिद्धान्त--

1--इकाइयां ज्ञान, अनुभव, क्रियायें, प्रवृत्ति तथा जीवन से सम्बन्धित होनी चाहिए, जिससे छात्रों को जीवन के लिए वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सके ।

2--इकाइयों का निर्माण छात्रों की रुचि आवश्यकता तथा योग्यता के अनुकूल होना चाहिए ।

3--इकाइयों में सामाजिक महत्व के कार्यों को स्थान देना चाहिए और उन्हें सामाजिक वातावरण में पूर्ण करना चाहिए ।

4--इकाई और क्रियाओं में तथा इकाइयों के बीच तार्किक सम्बन्ध होना चाहिए, जिससे दूसरी इकाई पहली इकाई के आधार पर विकसित की जा सके ।

5--इकाई का निर्माण विद्यालय में उपलब्ध सामग्री, उपकरण, समय स्थिति के आधार पर होना चाहिए ।

6--इकाई लचीली होनी चाहिए ।

7--इकाई से छात्र तथा विद्यालय दोनों की आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए ।

8--इकाई से सामूहिक कार्य के अवसर मिलने चाहिए ।

इकाई योजना की कार्यान्वयन विधि--

इकाई प्रविधि द्वारा शिक्षण करने से पूर्व यह आवश्यक है कि इकाई योजना तैयार कर ली जाय । इकाई योजना बनाने के लिए निम्न पदों के अनुसरण का सुझाव दिया जाता हैं ।

1--सामान्य उद्देश्यों का चुनाव ।

2--इकाई का खंडों में विभाजन--प्रत्येक खन्ड अपने में पूर्ण तथा खंडों में परस्पर क्रम-बद्धता हो ।

3--इकाई खंडों का विकास--

(अ) प्रत्येक खंड का एक विशिष्ठ उद्देश्य निश्चित होना चाहिए।

(ब) प्रत्येक खंड की विषय वस्तु की प्रकृति एवं क्षेत्र भी निश्चित करना चाहिए।

(स) प्रत्येक खंड के विकास हेतु ऐसी क्रियाओं का चयन किया जाय, जिनसे उद्देश्यों की प्राप्ति सम्भव हो।

4--इकाई की प्रस्तावना की तैयारी।

5--वैयक्तिक विभिन्नताओं की व्यवस्था--क्रियाओं एवं अनुभवों का संगठन छात्रों की योग्यता के आधार पर हो।

6--प्रगति का मूल्यांकन--उन विधियों का उल्लेख किया जाय, जिससे प्रगति की जांच की जा सके।

7--संदर्भ पुस्तकों तथा शिक्षण सामग्री का चयन--इकाई योजना को उक्त तैयारी के बाद ही इस पद्धति से शिक्षण कार्य किया जाय। इस पद्धति से शिक्षण के कुछ पद निर्धारित किए गए हैं, उनका पालन किया जाय।

इकाई शिक्षण पद्धति के पद--

1--अन्वेषण--पूर्व ज्ञान का पता लगाया जाता है, इसके लिए प्रश्न या वाद-विवाद का आधार लिया जाता है।

2--प्रस्तुतीकरण--यह कार्य वार्तालाप तथा व्याख्या द्वारा पूरा किया जाता है फिर बोध प्रश्नों द्वारा यह मालूम किया जाता है कि छात्र इकाई को कितना समझ सके हैं।

3--आत्मीकरण-(Assimilation)--इस पद में इकाई की पाठ्य वस्तु तथा क्रियाओं का विकास किया जाता है और छात्रों को इकाई की मुख्य बातों को आत्मसात करने का अवसर दिया जाता है। इस कार्य में शिक्षक बालकों को सहायता करता है तथा आवश्यक परामर्श देता है। छात्र इकाई के ज्ञान को निम्न साधनों द्वारा आत्मसात करते हैं--

(i) अध्ययन करके।

(ii) ज्ञान को व्यवस्थित करके।

(iii) प्रश्न एवं वाद-विवाद द्वारा ज्ञान की चर्चा करके।

(iv) लिख कर।

(v) परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करके।

(vi) निरीक्षण एवं प्रयोग करके।

4--संगठन एवं लेखन--इस पद में छात्र अपने ज्ञान को व्यवस्थित करते हैं और संगठन रूप में लिखते हैं। इस कार्य से शिक्षक यह जानने में सफल हो जाता है कि छात्र ज्ञान को भलीभांति ग्रहण कर सके।

5--आत्माभिव्यक्ति--इस पद में छात्र लिखित कार्य को कक्षा के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं और सभी छात्र सुनते हैं एवं ज्ञान ग्रहण करते हैं। इस कार्य में कितना समय दिया जाय, यह इकाई के स्वरूप एवं छात्रों की योग्यता पर निर्भर करता है।

अध्यापकों के लिए कार्यकलाप--

अध्यापक कुछ इकाइयां चुने, जैसे---हमें वस्त्र कैसे प्राप्त होता है, गांव का प्रशासन किस प्रकार चलता है, देश की सुरक्षा की क्या व्यवस्था है ? गन्ने की खेती कैसे की जाय, हमारे मनोरंजन के साधन क्या हैं ?

इसी प्रकार की अन्य इकाइयां चुनी जायं तथा उनका खंडों में विभाजन करके, छात्रों को दिया जाय।

संदर्भ पुस्तकें

1---शिक्षण कला---एस० के० अग्रवाल।

2---शिक्षण कला---डा० एस० एस० माथुर।

पाठ—चार

शिक्षण विधियां

शिक्षण विधियां—इस इकाई के अन्तर्गत हम यहां निम्नांकित शिक्षण विधियों का वर्णन करेंगे :—

(1) आगमन—निगमन विधि,

(2) विश्लेषण—संश्लेषण विधि,

(3) प्रदर्शन एवं निरीक्षण विधि,

(4) प्रयोग तथा अन्वेषण विधि।

आगमन–निगमन विधि।

आगमन विधि

परिभाषा—

इस विधि में 'विशिष्ट से सामान्य' की ओर तथा 'स्थूल से सूक्ष्म' (From concrete to Abstract) की ओर वाले सूत्र प्रयोग में लाये जाते हैं। इस विधि के अनुसार बालकों का ध्यान अनेक विशिष्ट उदाहरणों की ओर आकर्षित किया जाता है और वे इन्हीं विशिष्ट उदाहरणों की सहायता से एक सामान्य सिद्धान्त का निर्माण कर लेते हैं। इसके पश्चात् शिक्षक कुछ और उदाहरण प्रस्तुत करके उस सिद्धान्त की सत्यता सिद्ध करवा लेता है। इस प्रकार के ज्ञान देने के ढंग को 'आगमन विधि' कहते हैं।

उदाहरण—

बालक देखता है कि लकड़ी का टुकड़ा पानी में डालने पर डूबता नहीं वरन् तैरता रहता है। बालक यह भी देखता है कि लकड़ी के अन्य टुकड़े भी पानी में डाले जाने पर डूबते नहीं वरन् तैरते रहते हैं। इन बातों के अवलोकन के पश्चात् वह इस परिणाम पर पहुंचता है अथवा यह 'सामान्य नियम' निकालता है कि लकड़ी पानी में डाले जाने पर तैरती रहती है।

उपयोग—इस विधि का उपयोग भूगोल, विज्ञान, गणित, भाषा व्याकरण आदि विषयों में सरलता पूर्वक किया जा सकता है।

आगमन विधि के गुण—

1—इस विधि में रटने की विधि को प्रोत्साहन नहीं मिलता। इसमें बालक अपनी कल्पना एवं चिन्तन शक्ति तथा बुद्धि से काम लेता है।

2—इस विधि द्वारा स्वयं नियम निकालता है नियम निकालने पर उसे प्रसन्नता होती है और नवीन ज्ञान उसके मस्तिष्क का स्थायी अंग बन जाता है।

3—इस विधि में चूंकि शिक्षण सूत्रों का प्रयोग होता है इसलिए इसे हम मनोवैज्ञानिक विधि भी कह सकते हैं :

4—इस विधि के प्रयोग से बालक की रुचि, जिज्ञासा एवं मानसिक शक्तियों का विकास होता है।

5—यह विधि पाठ को रोचक बना देती है और बालकों को क्रियाशील रखती है।

उदाहरण—

इस विधि के अन्तर्गत हम सर्वप्रथम बालकों के सम्मुख एक नियम प्रस्तुत करते हैं कि त्रिभुज के तीनों कोणों का योग सर्वदा 180° होता है। इस नियम को सुनकर बालकों के मन में शंका उत्पन्न हो सकती है। वे सोच सकते हैं कि त्रिभुज तो भिन्न आकार तथा प्रकार के होते हैं उन सब पर यह नियम कैसे लागू हो सकता है? परन्तु अध्यापक प्रत्येक प्रकार के त्रिभुज का उदाहरण लेकर उनके कोणों को नपवाता है और बालकों की शंका को दूर करके नियम की सत्यता सिद्ध कर देता है। नियम की सत्यता सिद्ध हो जाने पर बालक उस नियम को ग्रहण कर लेता है।

उपयोग—

इस विधि का प्रयोग अंकगणित, विज्ञान तथा ज्यामिति के शिक्षण में किया जाता है। व्याकरण तथा सामाजिक अध्ययन में भी परिभाषा अथवा कुछ सामान्य कथन छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करके उनकी पुष्टि करवाई जाती है।

निगमन विधि के गुण—

इस विधि के प्रयोग द्वारा शिक्षण करने में समय लगता है।

आगमन विधि के दोष—

1—इस विधि के प्रयोग में अधिक समय लगता है।

2—यह विधि नियमीकरण तक ही सीमित है जब कि नियम की सत्यता की परख आवश्यक है। इसलिए निगमन विधि की आवश्यकता होती है।

3—इस विधि के द्वारा कभी-कभी बालक अशुद्ध नियम निकाल कर ग्रहण कर लेता है। तब शुद्धीकरण में अधिक कठिनाई होती है।

4—यह विधि छोटे बालकों के लिए उपयोगी नहीं है केवल बड़े तथा प्रतिभावान बालक ही इससे लाभ उठा सकते हैं।

निगमन विधि

परिभाषा—

यह विधि 'आगमन विधि' के बिल्कुल विपरीत है। आगमन विधि में हम विशिष्ट से सामान्य की ओर चलते हैं और इस विधि में हम 'सामान्य से विशिष्ट' की ओर (from General to Particulor) चलते हैं। इसमें अध्यापक पहले बालकों को सामान्य नियम बतलाता है फिर एक-एक उदाहरण लेकर उस सामान्य नियम की सत्यता सिद्ध करता है।

2—इस विधि में बालक अर्जित ज्ञान का अभ्यास सरलता से कर लेता है।

3—यह विधि सब विषयों के पढ़ाने के लिए उपयुक्त है।

4—चूंकि इस विधि में शिक्षक नियमों को प्रस्तुत करते हैं अतः बालकों को शुद्ध नियमों की जानकारी होती है।

5—इस विधि में शिक्षक अपने कार्य को सरलतापूर्वक पूर्ण कर लेता है।

निगमन विधि के दोष—

1—चूंकि इस विधि में अज्ञात से ज्ञात की ओर बढ़ते हैं अतः यह अमनोवैज्ञानिक है।

2—इस विधि में अध्यापक अधिक क्रियाशील रहता है बालक नहीं।

3—इस विधि में बालक की कल्पना, तर्क एवं मानसिक शक्ति का विकास नहीं होता।

4--बालक बिना समझे नियमों को रट लेता है। अतः यह विधि रटने को प्रोत्साहित करती है।

5--इस विधि द्वारा द्वारा प्राप्त किया ज्ञान अपूर्ण एवं अस्पष्ट होता है।

पूर्ण विधि आगमन-निगमन विधि--

यद्यपि उपर्युक्त दोनों विधियां एक दूसरे की विरोधी हैं परन्तु व्यावहारिक एवं उपयोगिता की दृष्टि से ये दोनों विधियां एक दूसरे की पूरक भी हैं। कक्षा शिक्षण में दोनों ही विधियों का महत्व है। आगमन के बाद निगमन विधि का प्रयोग आवश्यक है। आगमन विधि द्वारा विशिष्ट उदाहरणों से सामान्य सिद्धान्त प्राप्त कर लेना पर्याप्त नहीं है वरन् प्राप्त किए हुए सामान्य ज्ञान का परीक्षण भी आवश्यक है। बिना परीक्षण के उनकी सत्यता सिद्ध नहीं होती। अतः शिक्षण में पहले आगमन विधि तत्पश्चात् निगमन विधि का प्रयोग करना चाहिये। बिना इसके बालक को चिरस्थायी ज्ञान नहीं मिल सकेगा। इन दोनों के निरन्तर प्रयोग से ही ज्ञान की वृद्धि हो सकती है।

अध्यापक के लिये निर्देश--

अध्यापक छात्रों से दोनों विधियों द्वारा।

परिभाषा--

वास्तविक रूप में इस पद्धति का निर्माण शिक्षण की दो विधियों विश्लेषण एवं संश्लेषण से मिल कर हुआ है। विश्लेषण का अर्थ किसी वस्तु को खोलकर अथवा टुकड़े-टुकड़े करके पढ़ाने से है और संश्लेषण का अर्थ विभिन्न टुकड़ों, विभागों तथा उप विभागों को जोड़कर इकाई के रूप में पढ़ाने से है।

विश्लेषण तथा संश्लेषण में अन्तर

विश्लेषण	संश्लेषण
1--इसमें अज्ञात से ज्ञात की ओर चलते हैं।	1--इसमें ज्ञात से अज्ञात की ओर चलते हैं।
2--यह वैज्ञानिक विधि है	2--यह तार्किक क्रम की विधि है।
3--इसमें क्रिया को प्रोत्साहन मिलता है	3--इसमें रटने की विधि को प्रोत्साहन मिलता है।
4--इसके द्वारा बालकों को चिन्तन तर्क एवं विवेक शक्ति का विकास होता है	4--इसमें इनका विकास नहीं होता है।

उपर्युक्त दोनों विधियों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये विधियां अपने प्रत्येक रूप में अपूर्ण है। केवल विश्लेषण से ही काम नहीं चलता। कभी विश्लेषण के बाद हमें संश्लेषण की आवश्यकता होती है और कभी संश्लेषण के बाद विश्लेषण की। इस प्रकार हम देखते हैं कि वे दोनों ही विधियां एक दूसरे की पूरक हैं तथा इनका मिश्रित रूप ही लाभदायक सिद्ध होता है।

विश्लेषण तथा संश्लेषण विधि के गुण

1--इस विधि में अध्यापक द्वारा पूछे गये प्रश्नों का बाहुल्य रहता है। अतः छात्रों का मानसिक विकास अच्छा होता है।

2--यह विधि छात्रों के सभी संदेहों का निवारण कर उन्हें पूर्ण रूप से सन्तुष्ट करते हैं।

3--अनुशासनहीनता नहीं होती क्योंकि छात्र प्रश्नों के उत्तर खोजने में व्यस्त रहते हैं।

4--यह विधि रोचक तथा आकर्षक है।

विश्लेषण तथा संश्लेषण विधि के दोष

1--यह विधि काफी समय चाहता है।

2--यह विधि व्यक्तिगत विभिन्नता के सिद्धान्तों पर आधारित नहीं है।

3--यह विधि छात्रों को प्रश्न पूछने का अवसर प्रदान नहीं करती।

सफल शिक्षण के लिए सुझाव

1--दोनों का आदर्श रूप में मिश्रण किया जाय।

2--प्रश्नों को यथाविधि पूछा जाय।

3--प्रश्न पूरी कक्षा में फैले होने चाहिये।

टिप्पणी--अध्यापक छात्राध्यापकों से कुछ पाठ इस विधि से पढ़वायें तथा कक्षा में अनुभव में आये इस विधि के गुण-दोषों की सूची बनवा लें।

शिक्षण विधियां

प्रदर्शन एवं निरीक्षण।

प्रदर्शन विधि

अर्थ--

किसी घटना को दृश्य रूप में प्रस्तुत करना तकनीकी भाषा में प्रदर्शन (Demonstration) कहलाता है उदाहरण--जब गन्धक के अम्ल की चीनी पर प्रतिक्रिया दिखाते हैं तो एक प्रदर्शन प्रस्तुत करते हैं। पानी के तत्व दिखाने के लिए जब उसका विद्युत् विश्लेषण कर उसको आक्सीजन और हाइड्रोजन में विलन करते हैं, तो उपकरण को प्रस्तुत कर छात्रों के सम्मुख वैज्ञानिक घटना स्पष्ट करना प्रदर्शन है।

क्रिया विधि--

प्रयोग विधि में अध्यापक बालक को प्रयोग करने को देता है, और छात्र स्वयं प्रयोग करता है, अध्यापक बीच-बीच में आवश्यकतानुसार सहायता देता है, किन्तु प्रदर्शन विधि में अध्यापक स्वयं प्रयोग करता है और कक्षा के समस्त छात्र उस प्रयोग को देखते हैं। प्रदर्शन विधि में यह आवश्यक नहीं है कि प्रयोग प्रयोगशाला में ही किये जाय। यदि सम्भव हो तो प्रयोग के उपकरणों को कक्षा में लाकर एक ऊंची मेज पर व्यवस्थित कर लिया जा सकता है और यदि छात्र संख्या में कम हैं तो मेज के चारों ओर खड़े होकर प्रयोग देख सकते हैं। हां छात्रों की संख्या अधिक होने पर अच्छा यह रहता है कि छात्र अपने स्थान से ही प्रयोग देखें।

उपयोगिता—

—यह विधि विज्ञान विषय पढ़ाने के लिए बहुत उपयुक्त है। इससे घटनाओं का अधिक स्पष्टीकरण होता है। साथ ही इसका प्रभाव भी स्थायी रहता है।

0—इस विधि में स्थूल से सूक्ष्म की ओर सिद्धान्त का अनुसरण किया जाता है। जो मनोवैज्ञानिक है।

—प्रदर्शन अधिक रुचिकर होता है।

—छात्रों में सूक्ष्म दृष्टि का अभ्यास पड़ता है।

—शिक्षक के लिए समय और शक्ति की दृष्टि से अधिक उपयुक्त है। इसके लिये उपकरण पर एक प्रदर्शन स्वयं कर 10 उपकरणों पर अप्रशिक्षित छात्रों को निर्देशित करने की अपेक्षा सरल है।

—यह विधि आर्थिक दृष्टि से अधिक उपयुक्त है। कुछ उपकरण मंहगे होते हैं हर विद्यार्थी को नहीं दिये जा सकते।

प्रदर्शन विधि की सीमाएं

—उपकरण के विभिन्न अंगों के पूरे परिचय का अवसर नहीं मिलता, प्रायः संयोजित उपकरण ही छात्रों के समक्ष लाया जा सकता है।

—कक्षा में प्रदर्शन के समय सभी छात्रों को देख पाने की समस्या बड़ी गम्भीर होती है।

—प्रायः समयाभाव के कारण प्रदर्शन शीघ्रता से किया जाता है। अतः इसकी बारीकियों को छात्र देख नहीं पाता।

—छात्र इसमें स्वयं निष्क्रिय रहते हैं। इस प्रकार विज्ञान में प्रदर्शन को भी पूर्ण विधि के रूप में मान्यता देने के स्थान पर एक तकनीक के रूप में ही स्वीकार जा सकता है।

निरीक्षण विधि

(Observational Method)

अर्थ—

ज्ञान प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन स्वयं अपने आप किसी वस्तु अथवा तथ्य का पता लगाना है। जो ज्ञान विद्यार्थी स्वयं अपने आप देख कर अथवा घूम फिर कर अपने परिश्रम से प्राप्त करता है वह स्थायी होता है और वही उसके सम्पूर्ण ज्ञान का अंग बन जाता है। निरीक्षण विधि में अध्यापक स्वयं न बता कर बालकों को निरीक्षण करने के लिए उत्सहित करता है और बालक किसी तथ्य वस्तु या घटना का स्वयं निरीक्षण तथा जाँच पड़ताल करके ज्ञान प्राप्त करता है।

क्रिया विधि—

इस विधि के अन्तर्गत निम्न सोपान प्रयोग किये जाते हैं।

1—निर्धारित (Fixation) जिस वस्तु का बालकों को निरीक्षण करना हो उसे पहले से निश्चित कर लिया जाता है।

2—ध्यान केन्द्रित करना (Concentration)।

3—लेखबद्ध करना (Recording)।

उपयोगिता--

इस विधि के प्रयोग से बालकों में अवलोकन, चिंतन तथा स्वतंत्र भाव प्रकाशन की शक्ति का विकास होता है ।

--इस विधि के अनुसरण से बालकों को वस्तुओं में समानताओं तथा असमानताओं का ज्ञान सफलतापूर्वक हो जाता है उन्हें निष्कर्ष निकालने में कोई कठिनाई नहीं होती ।

--इस विधि से बालकों की सक्रियता बढ़ती है और वे अपने ज्ञान को स्थायी रूप देने में समर्थ हो जाते हैं ।

--इस विधि से इतिहास, विज्ञान, भूगोल के शिक्षण में बहुत अधिक सहायता मिलती है

अध्यापकों के लिए कुछ सुझाव

1--अध्यापक बालकों से जिन वस्तुओं का निरीक्षण कराना चाहता है पहले उसे स्वयं देख लेना चाहिये ।

2--किसी वस्तु का निरीक्षण कराने से पहले अध्यापकों को चाहिये कि वे बालकों से प्रश्न पूछ कर उनकी जिज्ञासा तथा रुचि को जाग्रत करलें ।

3--निरीक्षण करते समय बालकों को वस्तुओं को देखने तथा छूने की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिये ।

4--जब बालक निरीक्षण कर रहे हों अध्यापकों को चाहिये कि वे छात्रों से प्रश्न पूछते जायं जिससे छात्रों का ध्यान केन्द्रित रहेगा और वे इधर-उधर नहीं भटक पायेंगे । इससे यह फायदा होगा कि कार्य समय से एवं सफलतापूर्वक सम्पन्न होगा ।

शिक्षण विधियां

प्रयोग तथा अन्वेषण विधि

प्रयोग विधि

अर्थ--

प्रयोग विधि में विद्यार्थी सब बातें स्वयं प्रयोग करके सीखता है । इस विधि में अध्यापक विद्यार्थियों को स्वयं प्रयोग करने का अवसर देता है । प्रयोग का खाका वह स्वयं तैयार कर देता है और निश्चित आदेश देकर, प्रयोग कराता है । बालक प्रयोगों द्वारा अपने निष्कर्ष एवं सामान्य सिद्धान्त स्वयं निकालता है । इस प्रकार वह तथ्यों को यथार्थता जान लेता है शिक्षक स्वयं अपने निष्कर्षों तथा सिद्धान्तों को बालक पर नहीं थोपता है वरन् उसकी जिज्ञासा जागृत करके उसे स्वयं खोजन के लिये प्रेरित करता है ।

प्रयोग विधि में शिक्षा शास्त्र का एक अत्यन्त उपयोगी सिद्धान्त निहित है वह है 'काम करके सीखना' (Learning by doing) इस विधि द्वारा प्राप्त किया ज्ञान चिरस्थायी रहता है । इस विधि के द्वारा बालक में वैज्ञानिक दृष्टिकोण होता है ।

क्रिया विधि--

प्रयोग के महत्व के कारण एक प्रयोगशाला तथा उसमें उपयुक्त सामग्री तथा यंत्रों की व्यवस्था की जाती है ।

अध्यापक बालक को प्रयोग देता है । बीच-बीच में आवश्यकतानुसार सहायता करता है । छात्र प्रयोग करते हैं । यदि छात्र गलत परिणाम पर पहुंचते हैं तो अध्यापक उनका मार्ग दर्शन करता है ।

इस विधि से विज्ञान शिक्षण तो होता ही है सामाजिक अध्ययन पढ़ाये जाने की भी गतिशील देशों में व्यवस्था की जा रही है ।

विधि के गुण--

1--छात्र अनेक क्रियायें करता है और करके सीखता है ।

2--इस पद्धति में छात्रों की रुचि तथा सुविधा का ध्यान रखा जाता है ।

3--छात्रों में दायित्व वहन करने की क्षमता का विकास होता है ।

4--प्रयोग विधि सामूहिक शिक्षण के दोषों को दूर कर शिक्षण को सरल तथा बोध गम्य बनाती है ।

5--छात्र विभिन्न उपकरणों का प्रयोग करना सीख जाते हैं ।

विधि की सीमायें--

1--कुशल एवं दक्ष अध्यापक ही इस विधि से शिक्षण कार्य कर सकता है ।

2--इस विधि की सफलता अध्यापक के निर्देशन पर निर्भर है ।

3--विधि यंत्रवत् है (Mechanical) छात्र यंत्रवत् कार्य करता है ।

4--यह विधि अत्यन्त खर्चीली है ।

5--इस विधि से अध्यन करने के लिये अधिक समय चाहिये ।

6--ज्ञान के अव्यवस्थित रहने का भय रहता है ।

अन्वेषण विधि

अर्थ--

इस विधि का तात्पर्य बालकों को कम से कम बताने और उन्हे स्वयं अधिक से अधिक पहचानने के लिये प्रेरित करने से है । इस विधि के अन्तर्गत बालकों के समक्ष ऐसा वातावरण उपस्थित कर दिया जाता है कि वे स्वयं अपने प्रयास से पुस्तकों, यंत्रों तथा शिक्षकों की सहायता से ज्ञान प्राप्त करते हैं। नये नियम खोजकर निकालते हैं। इस विधि में बालक स्वयं अन्वेषक बन जाते हैं । इसी लिये इस विधि को अन्वेषता विधि कहते हैं ।

इस विधि का उद्देश्य नियमों तथा सिद्धतों की शिक्षा देना नहीं है बल्कि यह सिखलाना है कि तथ्यों का ज्ञान कैसे प्राप्त किया जाता है । दूसरे शब्दों में इस विधि का उद्देश्य बालकों में वैज्ञानिक प्रवृत्ति का विकास करना है जिससे वे स्वयं देखना, सोचना, निर्णय करना तथा अपने विचारों को व्यक्त करना सीख जायं ।

विधि के गुण--

1--इसमें बालक स्वयं अन्वेषण करके सत्य की खोज करता है ।

2--बालकों में आत्म विश्वास उत्पन्न होता है ।

3--बालकों की विभिन्न शक्तियों का विकास होता है ।

4--बालकों में स्वाध्याय की आदत पड़ती है ।

5. शिक्षक और विद्यार्थी का सम्बन्ध निकटतम हो जाता है ।

अन्वेषण विधि के दोष--

1--ज्ञान प्राप्ति करने में अधिक समय लगता है ।

2--बालक उन खोजों को जिनकों खोजने में सैकड़ों साल लग गये, थोड़े समय में फिर से

नहीं खोज सकता ।

3--सामग्री, पाठ्य पुस्तकें आदि मिलना कठिन रहता है ।

यद्यपि इस पद्धति में कुछ दोष अवश्य हैं फिर भी प्रत्येक शिक्षक को अपने शिक्षण में अन्वेषण की भावना को सामने रखना चाहिये ।

अध्यापक के लिये सुझाव--

1--अध्यापक अपनी योग्यता में वृद्धि करता हैं ।

कार्य प्रणाली--क्रिया विधि--

अध्यापक कक्षा में बालकों के समक्ष कुछ ऐसी समस्या प्रस्तुत कर देता है कि वे रुचि पूर्वक उसके समाधान में लग जाते हैं । उनको स्वयं सोचने, विचारने, पढ़ने-लिखने तथा प्रश्न करने की स्वतत्रंता होती है । वे समस्या का विश्लेषण करते हैं । अपने परीक्षण, निरीक्षण, पूर्व ज्ञान, प्रयोगों तथा अनुभवों द्वारा समस्या का हल ढूढ़ निकालते हैं ।

अन्वेषण विधि में अध्यापक का महत्व--इस विधि में अध्यापक का कार्य बहुत महत्व-पूर्ण है । शिक्षक बालकों के सम्मुख समस्या रखता है, बालकों को प्रोत्साहित करता है समस्या विश्लेषण में सहायता करता है, उपकरणों का आयोजन करता है, वह विद्यालय में उचित वातावरण बनाये रखता है । छात्रों की कठिनाइयों को दूर करने की चेष्टा करता है । अतः अध्यापक का योग्य, मेहनती, होना चाहिए ।

विधि का प्रयोग--इस विधि का प्रयोग प्रत्येक विषय में हो सकता है, परन्तु छात्र गणित एवं विज्ञान पुस्तकों का अधिकाधिक अध्ययन करता रहे । अतः छात्रों को प्रोत्साहित करे ।

संदर्भ पुस्तकें--चतुर्थ इकाई--शिक्षण विधियों के अन्तर्गत निम्नलिखित पुस्तकों की सहायता [illegible] ।

[illegible]यन का शिक्षण .. राम पाल सिंह ।

.. एस0 के0 अग्रवाल ।

.. नन्द किशोर श्रीमाली ।

.. डा0 एस0 एस0 माथुर

मूल्यांकन हेतु प्रश्न

[illegible] विधियां--

1--"ज्ञात से अज्ञात की ओर" "स्थूल से सूक्ष्म की ओर" इन सूत्रों से आप क्या [illegible]झते हैं ? शिक्षण में इनका क्या महत्व है उदाहरण व्याख्या कीजिये ।

2--आगमन विधि से आप क्या समझते हैं ? किन्हीं भी दो विषयों से दो उदाहरण [illegible]र इस पर प्रकाश डालिए ।

3--विश्लेषण से संश्लेषण विधि से आप क्या समझते हैं ? किन्हीं भी दो विषयों से दो [illegible]हरण लेकर इस पर प्रकाश डालिए ।

पाठ--पांच

शिक्षण युक्तियां

प्रश्नोत्तर

अध्ययन की युक्तियों में प्रश्नोत्तर युक्ति अत्यन्त महत्वपूर्ण है । एक शिक्षाविद् कौलविन के अनुसार "प्रश्न सबसे अच्छा उत्तेजक है, और यह अध्यापक को शीघ्र ही उपलब्ध हो जाता है ।"

प्रश्न पूछने की आवश्यकता--

इस युक्ति की उपयोगिता सिद्ध करने के लिय प्रश्न क्यों पूछे जाते हैं यह पता लगाना आवश्यक है ।

1--छात्र के पूर्व ज्ञान का पता लगाने के लिए।

2--छात्रों का ध्यान केन्द्रित करने के लिए।

3--बालक पाठ समझ रहा है कि नहीं यह पता लगाने के लिए।

4--पाठ दोहराने हेतु ।

5--बालकों में जिज्ञासा जागृत करने हेतु ।

6--बालकों की वैयक्तिक कमजोरियों का पता लगाने हेतु ।

7--बालकों में कल्पना शक्ति जागृत करने हेतु ।

प्रश्नों के प्रकार--

1--प्रस्तावना के प्रश्न--ये प्रश्न शृंखलाबद्ध व पूर्व ज्ञान पर आधारित होते हैं । अन्तिम प्रश्न समस्यात्मक होता है ।

2--विकासात्मक प्रश्न--य प्रश्न पाठ को आगे बढ़ाने हेतु किये जाते हैं ।

3--बोध प्रश्न--पाठ के अन्त में या पाठ के हर सोपान के अन्त में पूछ जाते हैं । इन प्रश्नों के द्वारा यह जाना है कि छात्र पाठ को कितना आत्म-सात कर पाये हैं ।

4--तुलनात्मक प्रश्न--दो तथ्यों की तुलना हेतु--उनमें समानता--असमानता का पता लगाने हेतु किये जाते हैं ।

5--परिभाषा प्रश्न--इन प्रश्नों के माध्यम से बालकों से परिभाषाएं निकलवाई जाती हैं जैसे संविधान किसे कहते हैं ?

6--आलोचनात्मक प्रश्न--ये किसी समस्या या तथ्य की आलोचना करने की दृष्टिकोण से पूछे जाते हैं । जैसे राज्यों के राज्यपालों का पद समाप्त कर देना चाहिए क्या आप विचार से सहमत हैं ।

7--निष्कर्षात्मक प्रश्न--दिये गये तथ्यों से निष्कर्ष निकालने हेतु किये जाते हैं ।

8--अभ्यास प्रश्न--विषय वस्तु का अभ्यास कराने हेतु किये जाते हैं ।

प्रश्नों की उपयोगिता

अ--प्रश्न पूछने हेतु अध्यापक को अपने अन्दर निम्नांकित गुण विकसित करने चाहिए :

(1) शीघ्र एवं स्पष्ट चिन्तन की योग्यता ।

(2) प्रश्नों को प्रभावशाली भाषा में रखने की योग्यता ।

(3) तुलनात्मक मूल्यों को समझाने की तीव्र शक्ति । वह यह निर्णय कर सके कि कौन सा प्रश्न आवश्यक है कौन सा अनावश्यक ।

ब-अच्छे प्रश्नों के ये लक्षण होने चाहिए--

(1) उनकी शब्दावली निश्चित हो ।

(2) प्रश्न चिन्तन को जागृत करने वाले होने चाहिए ।

(3) प्रश्न का एक ही उत्तर सम्भावित होना चाहिए ।

(4) बालक की आयु एवं योग्यता के अनुसार प्रश्न होना चाहिये ।

(5) प्रश्न निर्देशात्मक नहीं होने चाहिए, उदाहरणार्थ ऐसे प्रश्न नहीं होने चाहिये "ठोस पदार्थ गर्मी पाकर बढ़ते हैं ।"

(6) ऐसे प्रश्न भी नहीं होने चाहिये जिनका उत्तर 'हाँ' या 'न' में आता हो ।

(7) ऐसे प्रश्न न पूछे जायं जैसे अकबर और अशोक को महान क्यों कहा गया है ।

(8) प्रश्न निश्चित उद्देश्य से पूछे जायं ।

(9) प्रश्नों में पाठ्य पुस्तकों की शब्दावली का प्रयोग किया जाय ।

स--कक्षा में शिक्षक के प्रश्न पूछने का ढंग--

(1) प्रश्न सम्पूर्ण कक्षा से पूछा जाय ।

(2) प्रश्नों का वितरण ठीक होना चाहिए ।

(3) बालकों को उत्तर सोचने का अवसर मिलना चाहिये ।

(4) प्रश्न दोहराये न जायं ।

(5) प्रश्न विश्वासपूर्ण ढंग से पूछे जायं ।

(6) ध्यान को पाठ की ओर केन्द्रित करने के लिए प्रश्न पूछे जायं ।

(7) उत्तर न आने पर भाषा में परिवर्तन कर दिया जाय ।

(8) स्वाभाविक रूप से प्रश्न पूछे जायं ।

(9) एक बालक से उत्तर न आने पर विभिन्न बालकों से प्रश्न पूछे जायं ।

(10) पूछने की गति प्रयोजन के अनुकूल हो ।

छात्रों के प्रश्नों के प्रति अध्यापक क्या करे--

बालक जब पाठ में रुचि लेने लगते हैं और उनकी जिज्ञासा जागृत हो जाती है तो वे पाठ के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न करने लगते ह । एक कुशल अध्यापक को बालकों के प्रश्नों के प्रति उचित मनोवृति अपनानी चाहिये ।

बालकों को प्रश्न करने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये ।

पाठ से असम्बन्धित व्यर्थ के प्रश्नों की अवहेलना करनी चाहिये ।

कठिन प्रश्नों का उत्तर कक्षा में अन्य छात्रों की सहायता से निकलवाना चाहिए । बालक के न बता पाने पर शिक्षक को तब स्वयं बताना चाहिये ।

ठीक उत्तर निकलवाने के लिए शिक्षक क्या करें--

1--छात्रों के साथ धैर्य तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करें । उन्हें डाटना फटकारना नहीं चाहिये ।

उत्तर पूर्ण वाक्यों में हो, उचित शब्दों का प्रयोग हो, ार्थक हो तथा व्यर्थ शब्दाडम्बरों से रहित होने चाहिये ।

यदि उत्तर अशुद्ध हो तो तुरन्त दूसरे बालक की सहायता से उसे ठीक करा लेना चाहिए ।

अध्यापकों के लिये निर्देश--

अध्यापक छात्राध्यापकों से प्रश्नोत्तर युक्ति से पाठ संकेत बनवायेंगे तथा यह मूल्यांकन करेंगे कि वह प्रश्न बनाने तथा उनको पूछने की कला में निपुण हो गये हैं या नहीं ।

शिक्षण युक्तियां

व्याख्यान प्रणाली

यह स्पष्ट किया जाय कि यह विधि उच्च स्तरीय कक्षाओं के लिये ही उपयुक्त है । छोटी कक्षाओं में इसका उपयोग निम्नांकित कार्यों के लिए किया जा सकता है :

(1) स्पष्टीकरण हेतु ।

(2) प्रेरणा प्रदान करने हेतु ।

(3) समय बचाने हेतु ।

(4) स्पष्ट करने हेतु ।

(5) गृह कार्य देने हेतु ।

(6) अतिरिक्त विषय वस्तु प्रस्तुत करने हेतु ।

व्याख्यान पद्धति की विशेषताएं--

इसमें यह स्पष्ट किया जाय कि इस विधि से शिक्षण किस प्रकार होता है तथा यह प्रश्नोत्तर विधि से किन मामलों में समान तथा किन मामलों में भिन्न है ।

1--शिक्षक तथा छात्र आमने-सामने ज्ञान का आदान-प्रदान करते हैं । इस आदान-प्रदान में वादविवाद, बातचीत, तर्क तथा आलोचना के माध्यम से विषय वस्तु को यथासम्भव स्पष्ट किया जाता है ।

2--यह पद्धति तर्क शक्ति का विकास करता है ।

3--विषय वस्तु को अधिकतम रूप से स्पष्ट करता है ।

4--समय तथा परिश्रम की बचत करता है ।

5--छात्र तथा अध्यापक दोनों सक्रिय रहते हैं ।

अनुभवहीन अध्यापक इस पद्धति में क्या-क्या दोष पैदा कर देते हैं--

1--यह पद्धति छात्रों को कक्षा में मात्र श्रोता बना देता है ।

2--छात्रों का ज्ञान स्थायी नहीं होता ।

3--छात्रों की कठिनाई का पता नहीं लग पाता । कोर्स अवश्य खत्म हो जाता है ।

4--छात्रों को मौलिक चिन्तन का अवसर नहीं देता ।

व्याख्या पद्धति प्रयोग करने हेतु सुझाव--

1--विषय वस्तु को सुनियोजित कर लिया जाय ।

2--व्याख्यान देने से पूर्व उसकी एक रूपरेखा तैयार कर लेनी चाहिये ।

3--भाषा का विशेष ध्यान रखा जाय ।

4--स्वतंत्रतापूर्वक बात-चीत के रूप में व्याख्या व देने की चेष्टा की जाय ।

5--इस विधि का प्रयोग करते समय बालकों की मुख-मुद्रा को भी देखते रहा जाय ।

6--शान्तभाव एवं धीमी गति से बोला जाय ।

7--अध्यापक अपनी भाषा शैली उच्चारण तथा हाव-भाव का भी ध्यान रखें ।

8--बीच-बीच में प्रश्न पूछे जायं ।

9--बीच-बीच में उदाहरण, दृष्टान्त तथा कहानियों का भी सहारा लिया जाय ।

10--बालकों के उत्तर का ध्यान रखा जाय ।

अध्यापक के लिए निर्देश--

अध्यापक यह देखें कि छात्र इस युक्ति का छोटी कक्षाओं में प्रयोग केवल वहां हो करे जहां इनका प्रयोग किये बिना काम नहीं चलता या लाभकारी है ।

शिक्षण युक्तियां

कहानी कहना

प्रारम्भिक स्तर पर शिक्षण में रोचकता पर सबसे अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है । बालक स्वभावतः कहानी सुनने के इच्छुक होते हैं । कहानी के रूप में वर्णित तथ्य बालकों के लिये सरल तथा सजीव बन जाते हैं । कहानी रूप में जो ज्ञान दिया जाता है उसे बालक शीघ्रता एवं सरलतापूर्वक आत्मसात कर लेते हैं । अतः इस प्रणाली का उद्देश्य बालकों की रुचि एवं उत्साह को जागृत करना होता है ।

दूसरे कहानी के द्वारा बालकों की स्मरणशक्ति तथा कल्पनाशक्ति का विकास होता है ।

तीसरे उन्हें अपनी विचार शक्ति लाने का अवसर मिलता है। उनके विचार व्यवस्थित हो जाते हैं।

चौथे कहानियाँ सुनाकर बालकों का मनोरंजन किया जाता है।

पाँचवें बालकों की नैतिक शिक्षा हो जाती है। उनमें नैतिक तथा सामाजिक गुणों का विकास किया जा सकता है।

इस ढंग से पाठ्यक्रम के लगभग सभी विषय विशेषतः सामाजिक विषय बड़ी सुगमता एवं सरलतापूर्वक पढ़ाये जा सकते हैं। अतः कहानी सुनाने की कला में प्रत्येक शिक्षक को निपुण होना चाहिए।

कहानी कहने की विधि के प्रयोग में सावधानियाँ—

1—प्रत्येक शिक्षक को कहानी कहने की कला में लिखी किसी उत्तम पुस्तक का अध्ययन करना चाहिए।

2—कहानी कहने वालों को कहानी में घुल मिल जाना चाहिए।

3—शिक्षक जो कहानी सुनाना चाहता है उसे उसका पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

4—कहानी पढ़ी नहीं जानी चाहिए अपितु सुनानी चाहिए।

5—कहानी सुनाने का ढंग रुचिकर, संजीव एवं स्वाभाविक होना चाहिए। या सरल शुद्ध एवं स्पष्ट हो।

6—कहानी के हावभाव के अनुसार शिक्षक को अपने हावभाव प्रदर्शन करना चाहिए तथा स्वर में उतार-चढ़ाव होना चाहिए।

7—कहानी सुनाने वाले को अपनी कहानी शक्ति का प्रयोग करना चाहिए। होना नितान्त आवश्यक है।

उदाहरण—

आपने समान छोटे-छोटे बच्चों से सम्बन्धित बातें बालक बड़ी दिलचस्पी से सुनते हैं अतः इस स्वाभाविक प्रवृत्ति का शैक्षणिक उपयोग करना चाहिये। जैसे नैपाली बालक धन बहादुर थापा।

विषय वस्तु को प्रस्तुत करने के माध्यम—

कुछ उपयोगी माध्यम नीचे दिये गये हैं :

(1) वर्णनात्मक कहानियाँ।

(2) यात्रा तथा अन्वेषण की कहानी।

(3) पत्र व्यवहार।

(4) कथोपकथन तथा नाटक।

(5) जीवन-चरित्र, आत्म-कथा।

कुछ ध्यान देने योग्य बातें—

कहानी लिखते समय अध्यापक को निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये :—

कहानी की पृष्ठ भूमि भौगोलिक होनी चाहिये। चित्रण स्पष्ट एवं आकर्षक होना चाहिए।

ऊंची कक्षाओं में वर्णन विस्तृत होता जायेगा अतः उपर्युक्त कहानी कहते समय बंगाल की सामाजिक समस्याओं की भी चर्चा की जाय।
इससे कहानी तजीव एवं रोचक हो जाती है। कहानी की गति को नहीं रोकना चाहिए।

8—शिक्षक को कहानी सुनाने के उद्देश्य को सामने रखना चाहिए।

9—शिक्षक को कहानी सुनाते समय उचित स्थल पर उचित भाव प्रदर्शन करना चाहिए।

10—कहानी सुनाते समय बालकों की अवस्था, रुचियों तथा अभिरुचियों का भी ध्यान रखा जाय।

कहानी के विविध प्रकार—

विषय वस्तु के अनुसार कहानी निम्न प्रकार की हो सकती है—

(1) भौगोलिक कहानी

(2) ऐतिहासिक कहानी

(3) वैज्ञानिक कहानी

(4) सामाजिक कहानी

(5) सांस्कृतिक कहानी

(6) काल्पनिक कहानी

(7) साहित्यिक कहानी

(8) लोक कथा

किन्तु शिक्षण कला में उपयोगिता की दृष्टि से हम यहां केवल दो प्रकार की कहानियों की विवेचना करेंगे :

(1) भौगोलिक कहानी

(2) ऐतिहासिक कहानी

अ—भौगोलिक कहानियां

कहानी के लिए विषय वस्तु

शिक्षण में कहानी का प्रभाव बहुत कुछ अध्यापक की सूझबूझ तथा उत्साह पर निर्भर करता किन्तु फिर भी निम्नलिखित विषय वस्तु के लिए यह माध्यम अत्यन्त उपयुक्त है—

(1) विभिन्न प्रदेशों में मानव जीवन का वातावरण से सम्बन्ध।

(2) मानव कृत्य—रोजगार सम्बन्धी जैसे बरसात में किसान, कारखाने में मजदूर।

(3) सभ्यता का विकास—प्राकृतिक वातावरण से मानव का संघर्ष (अन्वेषण तथा आविष्कार) जैसे कोलम्बस भारत की खोज में।

1—कहानियों के लिए पात्र—

यद्यपि इन कहानियों में विषय वस्तु की अपेक्षा चरित्र चित्रण का स्थान गौण है फिर भी कहानी के पात्रों का बालकों के लिए आकर्षण जो कक्षा 2 या 3 के लिए वांछित युक्त नहीं।

कहानी में मानवीय पक्ष पर विशेष बल देने की आवश्यकता है।

ऐतिहासिक कहानी

कहानियों के लिए विषय वस्तु--

चूंकि छोटे बच्चे साधारण एवं सरल बातों को ही समझ सकते हैं इस दृष्टि से निम्न-लिखित प्रकार की विषय वस्तु प्राइमरी स्तर पर पढ़ाई जा सकती है--

(1) जीवन वृत्तान्त--प्रमुख ऐतिहासिक पुरुष ।

(2) कुछ ऐतिहासिक अवशेष तथा स्मारकों का विवरण ।

(3) महत्वपूर्ण पौराणिक कहानियां ।

(4) दैनिक जीवन में काम आने वाले उपकरणों के विकास का सरल ज्ञान ।

कहानियां प्रस्तुत करने के रूप--

1--जीवन विवरण

2--नाटक-वार्तालाप, आत्म-कथा, स्वागत-भाषण ।

3--यात्रा विवरण

4--चित्र, छाया चित्र आदि ।

अध्यापकों के लिए आवश्यक सुझाव--

1--रोचकता--कहानियां रोमांचकारी व आकर्षक होनी चाहिए ।

2--ऐतिहासिकता के प्रति सतर्क रहे ।

3--विवादग्रस्त विषय वस्तु पर निष्पक्ष दृष्टिकोण रखते हुए अधिक प्रशंसा अथवा निन्दा दोनों ही न आने दिया जाय ।

4--अतीत की चर्चा करते समय तथ्यों की इतनी अधिक प्रशंसा न करें कि बालक वर्तमान के प्रति निराश हो जाय ।

5--ऐतिहासिक घटना के सामाजिक महत्व पर अधिक बल दिया जाय ।

अध्यापकों के लिए निर्देश--

1--अध्यापक छात्राध्यापकों से सामाजिक अध्ययन सम्बन्धी कुछ पाठ इस युक्ति से पढ़ाने के लिए कहे तथा उन पाठों का मूल्यांकन करें ।

2--ऐतिहासिक तथा भौगोलिक स्थलों की सूची तैयार करें, जिन पर कहानी निर्माण भली प्रकार हो सकता है ।

3--अध्यापक कहानी के सैद्धान्तिक पक्ष पर अधिक बल न देकर सामाजिक अध्ययन के क्षेत्र में उपयोगी कहानी की रचना करने तथा उस उक्ति के प्रयोग करने की कला में निपुणता प्राप्त कराने पर अधिक ध्यान दें ।

शिक्षण प्रणालियां

कथोपकथन एवं नाटकीयकरण

नाटकीयकरण का अर्थ--

नाटकीयकरण का तात्पर्य किसी घटना या वस्तु का जीवित रूप वा वास्तविक रूप में प्रदर्शन करने से है । इसके द्वारा घटना का एक वास्तविक चित्र बालक के मस्तिष्क में उपस्थित हो जाता है । अतः उसके द्वारा दिया गया ज्ञान स्थायी हो जाता है ।

छोटे बालकों में अभिनय की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, नकल उतारने में थोरे-थोरे बालक आनन्द लेते हैं । इसलिए यह विधि उपयोगी है ।

नाटकीयकरण के प्रकार--

शिक्षण में इस प्रविधि का प्रयोग तीन प्रकार से हो सकता है :

1--घटना को रंग मंच पर भिन्न-भिन्न पात्रों द्वारा बालकों के समक्ष प्रदर्शित करके ।

2--किसी घटना से सम्बन्धित पात्रों की भूमिकाएं बालकों को देकर उनसे अभिनय करा कर ।

3--शिक्षक स्वयं किसी घटना के पात्रों का अभिनय करें ।

नाटकीयकरण प्रविधि की उपयोगिता--

1--यह प्रविधि भाषा, इतिहास तथा नागरिकशास्त्र के शिक्षण के लिए बहुत उपयोगी है ।

2--यह मनोवैज्ञानिक विधि है ।

3--इसमें बालकों की कल्पना शक्ति का विकास होता है ।

नाटकीयकरण से शिक्षा देने में बाधाएं--

1--अधिक समय तथा धन की आवश्यकता ।

2--नाटक में वास्तविकता लाने के लिए विशेष सामग्री की आवश्यकता ।

3--अनुशासन की समस्या ।

नाटकीयकरण प्रविधि के प्रयोग में सावधानियां--

अध्यापकों के लिए सुझाव--

अत्युक्ति से बचना चाहिए ।

घटनाओं को विकृत न करना ।

नाटक के प्रसंग का बालकों को ज्ञान होना ।

नाटक के पात्रों की भाषा सरल, सुबोध व पात्रानुकूल होना चाहिये ।

अभिनय के कला पक्ष के साथ भाव पक्ष का भी ध्यान रखना ।

अध्यापकों के लिए निर्देश--

प्रदत्त भौगोलिक तथा सम सामायिक स्थलों की सूची के अतिरिक्त ऐसी ही एक सूची तैयार करके छात्रों को दें ।

पर्यटन

पर्यटन का अर्थ--

इस विधि में विद्यार्थी को कक्षा से बाहर ले जाकर विषय वस्तु का अध्ययन कराया जाता है । छात्र स्वाभाविक रूप से वस्तुओं को देखते हैं । इस प्रकार भूगोल, इतिहास आदि विषय का प्राप्त किया हुआ ज्ञान स्थायी होता है ।

उपयोगिता--

--पर्यटन बालकों की रुचि की चीज है ।

-- विषय वस्तु का ज्ञान मूर्त एवं स्थायी होता है ।

-- निरन्तर पर्यटन व निरीक्षण से छात्र भौगोलिक तथ्यों को छानबीन लेते हैं । इसमें कल्पना, निर्णय एवं तर्क शक्ति का विकास होता है ।

उदाहरण--

— निम्न कक्षाओं में (1 से 5) 40 मिनट के कालांश के भीतर ही कक्षा भवन से बालकों को बाहर ले जाकर निरीक्षण योग्य सामग्री का निरीक्षण कराया जा सकता है ।

-- 6 से 8 तक की कक्षाओं में स्कूल से बाहर कार्यक्रम बनाकर 5–10 किलोमीटर की दूरी पर ले जाकर भौगोलिक महत्व की चीजें।

निरीक्षण योग्य चीजें--

कारखाने, नदी, रेलवे स्टेशन आदि ।

अध्यापकों के लिए सुझाव--

1--यात्रा के लिए उचित अधिकारियों से पूर्व ज्ञान प्राप्त कर लिया जाय ।

2--दिन व समय पहले से निर्धारित करके अभिभावकों से अनुमति प्राप्त कर ली जाय

3--जाने से पूर्व अध्यापकों को कुछ आवश्यक निर्देश दे दिये जायं ।

4--छात्रों को विभिन्न समूहों में बांट दिया जाय ।

5--प्रत्येक समूहों के लिए एक निर्देशक नियुक्त कर दिया जाय ।

6--हर छात्र को एक-एक डायरी दे दी जाय ।

7--छात्रों की शंकाओं का यथाशीघ्र निवारण किया जाय ।

8--यात्रा के पश्चात् यात्रा के संस्मरण ज्ञात किये जायं ।

9--छात्रों द्वारा अर्जित ज्ञान का मूल्यांकन किया जाय ।

संदर्भ पुस्तकें--

1--सामाजिक अध्ययन--राम पाल सिंह ।

2--विज्ञान शिक्षण--नन्द किशोर श्रीमाली ।

3--भूगोल अध्ययन--ए० एन० सिंह ।

4--शिक्षण कला--एस० के० अग्रवाल ।

पाठ—छः

सहायक सामग्री

चित्र तथा माडल—

माडल—अध्यापक छात्राध्यापकों को यह स्पष्ट करेगा कि कक्षा में हर मूल वस्तु को मूल रूप में प्रदर्शित नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में उसका प्रतिरूप प्रयोग किया जा सकता है।

प्रति रूप मूल वस्तु के अच्छे अनुकरण होते हैं अन्तर केवल आकार का होता है।

माडल (प्रतिरूप) का वर्गीकरण—

अध्यापक छात्राध्यापकों की जानकारी के लिए यह बतायेगा कि सामान्यतः ये तीन प्रकार के होते हैं :

1—ठोस—इनका प्रयोग मुख्यतः बाह्य विशेषताओं के कारण किया जाता है।

2—एक्सरे—इनका प्रयोग वस्तु के भीतरी भाग को प्रकट करने के लिये किया जाता है।

3—कार्य प्रतिरूप—इनका प्रयोग चालन प्रक्रिया को दर्शाने के लिए किया जाता है।

प्रतिरूप की शिक्षणात्मक उपयोगिता—कक्षा शिक्षण के लिए छात्राध्यापकों को बताया जाय कि—

1—प्रतिरूप द्वारा हम किसी बड़ी से बड़ी अथवा छोटी से छोटी चीज का विहंगम दृष्टिपात सुविधापूर्वक कर सकते हैं।

2—इनके द्वारा भूत व भविष्य भी बोध गम्य बनाया जा सकता है जैसे पानीपत की लड़ाई का प्रतिरूप।

3—प्रतिरूपों द्वारा उन स्थानों में पहुंचने का अनुभव प्राप्त किया जा सकता है जहां जाना दुर्लभ है जैसे टुंड्रा रेगिस्तान आदि।

ये वस्तु को सरल रूप में व्यक्त करते हैं अतः इनके द्वारा समझना आसान है जैसे हृदय का कार्य प्रतिरूप।

5—प्रतिरूप छात्रों की सहायता से अध्यापक तैयार करके भी दिखा सकता है। किन्तु प्रयोग से पूर्व कक्षा में प्रदर्शित न किया जाय।

प्रतिरूप बनाने के लिए सामग्री—

अध्यापक छात्राध्यापकों को प्रतिरूप बनाने के लिए आवश्यक सामग्री की ओर भी इंगित कर सकते हैं। ताकि वे बने बनाये प्रतिरूप न मिलने पर छात्रों की सहायता से उनको बनाने की कला में भी निपुणता प्राप्त कर लें संकेत मात्र कुछ वस्तुओं के नाम दिये जा रहे हैं—

गीली मिट्टी, प्लास्टिक मोटे पत्ते, लकड़ी वाले बोर्ड प्लाई बुड से बनाये जा सकते हैं कपड़ों के कतरन, टीन के डिब्बों, लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े खाली दियासलाई आदि।

वृक्ष बनाने के लिए सूखी–सूखी वनियों की स्पंज, रुई या कागज के टुकड़े काम में ला जा सकते हैं । घास के लिये रंगा बुरादा या चोकर का प्रयोग किया जा सकता है ।

इसकी विस्तृत जानकारी के लिए श्रव्य दृश्य विभाग द्वारा मुद्रित शिक्षा के नये माध्य नामक पुस्तिका देखें ।

प्रतिरूप के प्रयोग करने में सावधानियां––की ओर भी अध्यापक को चाहिए कि छात्राध्यापकों का ध्यान आकर्षित करें । जैसे––

1––प्रतिरूप वास्तविक वस्तु से मिलता–जुलता होना चाहिए ।

2––प्रतिरूप में वे सब अंग आ जाय जो वास्तविक वस्तु में महत्वपूर्ण हों ।

3––प्रतिरूप आकर्षक एवं सुन्दर होने चाहिए ।

4––प्रतिरूप कक्षा में ऐसे स्थान पर रखा जाय जहां से सभी छात्र उसे आसानी से देख सकें ।

चित्र

अध्यापक छात्राध्यापक को यह स्पष्ट करे कि––

मनुष्य अपने भाव प्रकाशन एवं प्रदर्शन में चित्रों को एक आवश्यक एवं उपयोगी साधन पाया है ।

चित्रों के प्रकार

सामान्य जानकारी के लिए छात्राध्यापकों को चित्रों के प्रकार बताए जायें ।

1––फोटो ग्राफ, 2––प्रिंट, 3––रेखा चित्र, 4––पोस्टर, 5––पाठ्यपुस्तक चित्रण,

चित्रों की उपयोगिता

कक्षा शिक्षण में चित्रों की उपयोगिता को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है :

1––वे अर्थ को वास्तविक एवं स्पष्ट बनाते हैं ।

2––तात्कालिक प्रभावात्मकता के कारण वे अवधान केन्द्रीभूत करते हैं ।

3––वे सुलभ हैं ।

4––उन्हे प्रयोग करना सरल है और इनके द्वारा अर्जित ज्ञान स्थायी होता है ।

5––इनके द्वारा कल्पना शक्ति का विकास होता है ।

6––उन्हें बार–बार प्रयोग किया जा सकता है ।

7––वे रुचि उत्पन्न करते हैं, भावों को स्पष्ट करते हैं । और विचार करने का आधार बनाते है ।

8––वे सौन्दर्यानुभूति का विकास करते हैं ।

9––वे विद्यार्थियों के ज्ञान का परीक्षण करने में प्रयुक्त किये जा सकते हैं ।

चित्रों को कैसे बनाया जाय––

कक्षा शिक्षण में इनकी महान उपयोगिता देखते हुए छात्राध्यापक इनको स्वयं भी बना चाहिये अतः अध्यापक बतायें कि उन्हे किस प्रकार बनाया जा सकता है ।

1––झिल्लीदार कागज की सहायता से ट्रेस करके ।

2––किसी कांच की तख्ती पर चित्र रखकर विरोधी दिशा से प्रकाश फैला कर ।

3--यदि चित्रों को कुछ बड़ा रूप देना चाहें तो फोटोग्राफी की सहायता से।

चित्रों का शिक्षण में प्रयोग--करने हेतु छात्राध्यापक को बताया जाय कि--

1--चित्रों को बक्स में बन्द रखे।

2--कक्षा को चित्रों से न भरें।

3--छात्रों को चित्र दिखाने से पूर्व कुछ बताया जाये।

4--चित्र व्याख्या आवश्यक है।

5--पहले छात्रों को स्वयं अपने ढंग से चित्र का अध्ययन करने की स्वतन्त्रता दी जाय।

6--छात्रों के ज्ञान की जांच की जाय।

7--छोटे चित्र को वैयक्तिक रूप से दिखाया जाय या बुलेटिन बोर्ड पर लगा दिया जाय।

इकाई--सहायक सामग्री

मानचित्र

उपयोगिता--

मानचित्र की उपयोगिता विशेष कर भूगोल विषय में है। बिना मानचित्रों के प्रयोग किये हुए भूगोल की शिक्षा अर्थहीन, अपूर्ण तथा अधूरी है। भूगोल की 99 प्रतिशत विषय सामग्री तथा अध्ययन मानचित्रों पर आधारित है।

इनकी सहायता से किसी स्थान की स्थिति प्राकृतिक दशा, जलवायु तथा अन्य सभी भौगोलिक बातें सरलतापूर्वक पढ़ायी जा सकती है।

प्रकार--

सामान्य जानकारी के लिए छात्राध्यापकों को मानचित्र के प्रकार बताये जायं।

1--ग्लोब-माडल के समान है जो कि समतल मानचित्र की अपेक्षा अधिक शिक्षाप्रद है।

2--भौतिक मानचित्र--इनको पृथ्वी पर बनाकर बर्फ को रंगों द्वारा दिखाया जाता है।

3--समतल मानचित्र--अधिकांशतः कक्षा में इनका ही प्रयोग किया जाता है।

4--एटलस इनका छात्र स्कूल में डेस्क पर तथा घर पर भी प्रयोग कर सकता है।

प्रायोगिक विधि--अध्यापक अध्यापिकाओं को समतल मानचित्रों के प्रयोग करने से रखी जाने वाली सावधानियों को स्पष्ट करेगा ताकि वे उसको प्रयोग करने की कला में निपुण हो जायं।

मानचित्र कक्षा के अनुसार उचित आकार के हों।

भावना चित्र स्पष्ट हों।

मानचित्र में पैमाना दिया हो।

--मानचित्रों को आवश्यकता पड़ने पर ही प्रस्तुत किया जाय और आवश्यकता पूरी हो जाने पर हटा दिया जाय।

--मानचित्रों को उचित स्थान पर ही लटकाया जाय।

--भित्ति मानचित्रों पर स्थान आदि दिखाने में संकेत का प्रयोग करना चाहिए।

—मानचित्र अध्यापक तथा छात्र दोनों बना सकते हैं । मानचित्र बनाते समय किन–किन बातों का ध्यान रखा जाय यह अध्यापक छात्राध्यापकों को स्पष्ट करेगा ताकि वे मानचित्र बनाकर उसको प्रयोग करने में निपुणता प्राप्त कर सकें ।

1––मानचित्र में व्यर्थ की बातें न दर्शायी जायें ।

2––एक ही मानचित्र में सब बातें न दर्शायी जायं ।

3––शुद्धता का अधिकाधिक ध्यान रखा जायं ।

4––उपज तथा उत्पादन को चित्र से दिखाना उत्तम है नाम से नहीं ।

5––अक्षांश तथा देशान्तर रेखाओं का भी यथा स्थान स्पष्टीकरण होना चाहिए ।

6––मानचित्र में प्रयोग होने वाले रंग तथा प्रत्येक सुन्दर तथा दर्शनीय होने चाहिए । जिससे दूर वाला छात्र भी उसे देख सके ।

सहायक सामग्री

श्यामपट

अध्यापक छात्राध्यापकों का ध्यान इस ओर आकर्षित करेगा कि श्यामपट कक्षाध्यापन में प्रस्तुतीकरण को अधिक स्पष्ट एवं प्रभावोत्पादक बनाने का साधन है । यह सस्ता एवं उपयोगी उपकरण है ।

सफल शिक्षण के लिए श्यामपट की विशेषताएं

छात्राध्यापक को स्पष्ट किया जाय कि—

श्यामपट की ऊंचाई छात्रों के आयु वर्ग के अनुसार हो ।

श्यामपट चमकनेवला न हो ।

श्यामपट केन्द्रीय स्थान में रखा जाय ।

आवश्यकतानुसार उस पर रंग किया जाता रहे ।

श्यामपट के प्रकार––सामान्य ज्ञान के लिये छात्रों को बताया जाय कि––

दीवार पर बने हुए सीमेन्ट का श्यामपट ।

लकड़ी के चौखटे पर बना हुआ या घूमने वाला श्यामपट ।

लकड़ी के स्टेट पर बना हुआ पलट जाने वाला श्यामपट ।

आवश्यकतानुसार ऊपर से नीचे खिसकाये जा सकने वाला श्यामपट ।

लपेट श्यामपट

श्यामपट की उपयोगिता––

कक्षा शिक्षण के लिए छात्राध्यापक को बताया जाय कि अध्यापक श्यामपट का प्रयोग निम्न कार्यों में कर सकता है :––

1—रेखाचित्र, ग्राफ, मानचित्र आदि बनाने के लिये ।

2—छात्रों का ध्यान आकर्षित करने के लिए ।

3––प्रमुख तथ्यों का उल्लेख करने के लिए ।

4––छात्रों से अभ्यास कराने के लिए ।

5--सार लिखने के लिए ।

6--उदाहरण तथा गृह कार्य देने के लिए ।

प्रायोगिक विधि--श्यामपट को प्रयोग करने की कला को ध्यान में रखते हुए अध्यापक छात्राध्यापक को बताएगा कि--

1--श्यामपट ऐसे स्थान में रखा जाय जहां से सभी छात्र देख सके ।

2--श्यामपट पर पर्याप्त प्रकाश हो किन्तु प्रकाश का परावर्तन न हो ।

3--श्यामपट पर जो लिखा जाय एक से रूप में सीधी पंक्ति में लिखा जाय ।

4--स्पष्ट तथा साफ शब्दों में लिखा जाय ।

5--लिखने में क्रम तथा विचार व्यवस्था का ध्यान रखा जाय ।

6--लिखते समय कथनानुशासन का ध्यान रखा जाय ।

अध्यापकों के लिए निर्देश--

छात्राध्यापकों से श्यामपट अभ्यास करायेंगे ।

सहायक सामग्री

फ्लैश कार्ड

साधारण जानकारी

यह दृश्य उपकरण लगभग 10, 12 इंच या 25 से 40 से0 मी0 के आकार के होते हैं । मोटे कागज पर बने हुए चित्रों के कार्ड से होते हैं। इस पर या तो चित्र बना होता है या लिखा रहता है । ये आवश्यकतानुसार 8, 10 तक एक स्थान पर क्रमानुसार बच्चों के सामने कोई विचार या तथ्य प्रस्तुत करने के लिए प्रयोग किये जाते हैं ।

जितनी बार हम चाहें उठा कर हम इन्हें बच्चों को दिखा सकते हैं और इस प्रकार इनके द्वारा क्षणभर में जानकारी प्राप्त की जा सकती है सम्भवतः इसीलिए इन्हें फ्लैश कार्ड कहा जाता है ।

तैयार करने की विधि--छात्र स्वयं इन्हें बना सकने की कला में निपुण हो जायं उसके लिए अध्यापक उनको बतायेगा कि--

(1) ये हाथ से या छपे हुये बनाये जा सकते हैं ।

(2) इनके लिए मोटा कागज-हल्के रंग का रैपिंग पेपर या कार्ड बोर्ड प्रयोग में लाया जा सकता है ।

(3) कागज पर स्याही फैले नहीं ।

(4) प्रत्येक कार्ड के पीछे कोई चिन्ह रहना चाहिए जिससे क्रमानुसार उनको दिखाया जा सके ।

(5) चित्र बनाने के लिये पहले एक रूप-रेखा अलग कागज पर बना लेनी चाहिए ।

(6) अक्षरों के लिये बाल पैन या मोटी निब, मोटी सेठे की कलम या स्टेंसिल का प्रयोग किया जा सकता है ।

(7) यदि केवल लिखित सामग्री हो तो अक्षर बड़े-बड़े रखने चाहिए ।

(8) अक्षर सरल हों उनमें अलंकारिता न हो ।

शिक्षण में प्रयोग--शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिये इनका कक्षा में प्रयोग किस प्रकार किया जाय इसके लिये अध्यापक छात्राध्यापकों को बतायेगा कि--

(1) श्यामपट पर दिया हुआ विवरण फलैश कार्ड द्वारा बड़ी सरलता से दुहराया जा सकता है ।

(2) उसे बुलेटिन बोर्ड पर भी लगाया जा सकता है ।

(3) फलैश कार्ड के पीछे उन प्रश्नों के सही उत्तर लिखे जा सकते हैं जिन्हें कक्षा में हल करना है । उनकी वह सहायता ले सकता है ।

(4) यदि फलैश कार्डों पर श्यामपट्ट पर क्रमानुसार लगा दिया जाय तो वे चार्ट का काम भी दे सकते हैं ।

सहायक सामग्री

फलेनल बोर्ड

महत्व--छात्राध्यापकों को स्पष्ट किया जाय कि--

(1) कम कर्म में तथा कम समय में इसको तैयार किया जा सकता है ।

(2) शिक्षण का एक उत्तम उपकरण है । तथा

(3) विद्यार्थियों पर अपना शैक्षिक और मनोरंजक प्रभाव डालता है ।

तैयार करने की विधि--इसे छात्राध्यापक स्वयं तैयार कर सकते हैं, इसके लिये अध्यापक को उनका मार्ग दर्शन करना होगा ।

(1) सुविधानुसार लगभग एक मीटर साईज का लकड़ी अथवा हार्ड बोर्ड का या कार्ड बोड लिया जाय ।

(2) जितना बड़ा बनाना है उसमें कुछ बड़ा कपड़ा लेकर बोर्ड के ऊपर मढ दिया जाय यह कपड़ा फलालेन हो सकता है या खद्दर भी हो सकता है ।

(3) कपड़ा इस प्रकार लगाया जाता है कि रोंयेदार धरातल ऊपर रहे और उसमें कहीं सिकुड़न न रहे ।

(4) कपड़े का रंग काला, गहरा भूरा अथवा नीला रहता है ।

(5) पीछे कपड़े को कीलों से जड़ दिया जाता है ।

(6) ऊपर हुक लगा दिये जाते हैं ताकि इसको टांगा जा सके ।

फलैनेलो बोर्ड पर लगाने के लिए चित्र--

चित्र मोटे कागज पर चिपका कर पीछे रेगमाल कागज की पट्टी लगा दी जाती है । फलैनो बोर्ड पर दबाने से ये चित्र उन पर चिपक जाते हैं ।

फलैनेलो बोर्ड को प्रयोग करने की विधि--छात्राध्यापकों को इनका उचित उपयोग आना चाहिए । इसके लिए अध्यापक प्रयोग करने की विधि को स्पष्ट करेगा । प्रयोग करके भी बताया जाय ।

(1) चित्रों पर नम्बर विषय आदि डाल कर रख लिया जाय ।

(2) पाठ् पढ़ाते समय आवश्यकतानुसार उनको बोर्ड पर दबा दिया जाय ।

(3) छोटी कक्षाओं में कहानी या सामाजिक शिक्षा देने के लिये जानवरों, मकान, वृक्ष इत्यादि के कटे हुए आकारों का प्रयोग अनुकूल रहेगा ।

(4) ऊंची कक्षाओं में इन पर कटे चार्ट तथा चित्रों का प्रयोग हो सकता है ।

फलैनेल बोर्ड के प्रयोग करने में सावधानियां--

शिक्षण में इसके प्रयोग को अधिकाधिक प्रभावी बनाने के लिये अध्यापक छात्राध्यापकों को इसके प्रयोग करने में रक्खी जाने वाली सावधानियों से अवगत करायेगा । कुछ सावधानियां निम्नांकित हैं :--

(1) चित्र क्रमानुसार लिफाफे या पैकेट में रखे जा सकते हैं किन्तु प्रदर्शन करते समय उन्हें मेज पर या ट्रे में रक्खा जा सकता है ।

(2) प्रत्येक चित्र या उसके भाग पर कोई चिन्ह लगा रहना चाहिए जिससे बोर्ड पर लगाते समय उन्हें ढूढ़ना न पड़े ।

(3) चित्रों को बोर्ड पर दबा कर लगाया जाय ।

(4) चित्रों का बोर्ड पर प्रदर्शन कलात्मक ढंग से किया जाय ।

सहायक सामग्री

रेडियो

उपयोगिता--

(1) रेडियो द्वारा समाचार तथा दूर-दूर स्थानों में होने वाली घटनाओं का वर्णन सुना जा सकता है । इससे व्यक्ति के सामान्य ज्ञान में वृद्धि होती है ।

(2) रेडियो पर अच्छे आदर्शमय कथानक या व्याख्यान सुनने से बालकों का नैतिक विकास होता है ।

(3) रेडियो द्वारा कक्षा शिक्षण किया जा सकता है । किसी विशेष विषय पर जब कोई पाठ प्रसारित किया जाता है तो कक्षा में प्रसारित कार्यक्रम को उसी दिन सुना जा सकता है या टेप रेकार्ड करके दूसरे दिन बालकों को सुनाया जा सकता है ।

(4) रेडियो के माध्यम से दूर-दूर के स्थानों पर रहने वाले छात्रों को एक ही प्रकार से तथा एक समय में शिक्षा दी जा सकती है ।

रेडियो की सीमाएं--

(1) रेडियो पर प्रसारित कार्यक्रम के आधार पर श्रोतागण का किसी जिज्ञासा का समाधान सम्भव नहीं है ।

(2) रेडियो द्वारा शिक्षण में छात्र के स्तर का ध्यान नहीं रखा जा सकता ।

रेडियो का कक्षा शिक्षण में सफल प्रयोग के लिये सुझाव--

(1) रेडियो के छात्रों के आयु एवं बौद्धिक स्तर के अनुकूल चुने हुये कार्यक्रम ही सुनवाये जायं ।

(2) रेडियो पर प्रसारित कार्यक्रम के आधार पर उत्पन्न जिज्ञासा का समाधान अध्यापक द्वारा किया जाना चाहिए ।

(3) यथा सम्भव रेडियो कार्यक्रम कक्षा में ही सुनवाने चाहिए जिससे कक्षा वातावरण बना रहे ।

टिप्पणी--अध्यापक को चाहिए कि वह यदि विद्यालय में रेडियो उपलब्ध हो हुये रेडियो कार्यक्रम सुनवायें ।

सहायक सामग्री

टेलीविजन

रेडियो तथा टेलीविजन में अन्तर--

(1) रेडियो पर केवल ध्वनि सुनाई देती है। टेलीविजन सेट पर हम विद्वानों कलाकारों की वाणी सुनने के साथ-साथ उनकी शक्ल भी देख सकते हैं।

(2) रेडियो में छात्र को केवल श्रवण किन्तु टेलीविजन सेट पर दोनों ज्ञानेन्द्रियों श्रवण एवं दृष्टि को शिक्षण मिला है। अतः टेलीविजन द्वारा प्राप्त ज्ञान अधिक स्थाई है।

टेलीविजन की उपयोगिता--चल चित्र में पाये जाने वाले सभी गुण इसमें है, इसके अतिरिक्त इसमें एक गुण और है वह यह कि इसके द्वारा नित्य नये कार्य क्रम प्रसारित किये जा सकते हैं।

भूउपग्रह की योजना के अनुसार उत्तर प्रदेश के बहुत से गांवों में भी टेलीविजन का प्रसार पहुचने लगा है। देहली में इस समय भी इस उपकरण की सहायता से शिक्षा दी जा रही है।

सहायक सामग्री

अन्य उपकरण--एपीडायस्कोप

प्रोजेक्टर टेपरेकार्डर

एपीडायस्कोप--इसके पूर्व कुछ ऐसे उपकरणों का उल्लेख किया गया है जो प्रचलित है। परन्तु कुछ ऐसे भी साधन है जो हमारे देश में प्रचलित तो है नहीं किन्तु उनका उल्लेख इसलिए आवश्यक है कि वे अत्यन्त उपयोगी है और यदि उनका उपयोग किया जाय तो शिक्षण में वे एक लाभप्रद परिवर्तन उत्पन्न कर शिक्षण को सरल, मनोरंजक तथा लाभप्रद बना देंगे।

ऐसा ही एक साधन है एपीडायस्कोप। इसके द्वारा छपी हुई आकृतियां, मानचित्र खाके, पुस्तक के पृष्ठ दिखाये जा सकते हैं। कमरे में प्रकाश को कम करके इस यन्त्र के द्वारा चित्रों तथा पुस्तक के पृष्ठों को पर्दे पर प्रदर्शित किया जाता है। इसमें सुविधा यह है कि चित्र ज्यों के त्यों पुस्तक में लगे दिखाये जा सकते हैं उनको फाड़ने चिपकाने आदि का आवश्यकता नहीं।

टिप्पणी--दूसरे चित्र के प्रदर्शन के साथ अध्यापक पॉइन्टर से दिखाकर वार्तालाप भी कर सकता है। हर अध्यापक तथा बालकों में सामग्री जुटाने की आदत डाली जा सकती है।

प्रोजेक्टर--विज्ञान, भूगोल, वनस्पतिशास्त्र, ऐतिहासिक भवन एवं अस्त्र-शस्त्र, स्वास्थ्य सम्बन्धी बातें, बीमारियों आदि की सूक्ष्म बातों का ज्ञान देने के लिए शीशे की छोटी-छोटी स्लाइड्स बनाई जाती है। इन स्लाइड्स को कक्षा में पर्दे पर बड़ा करके दिखाया जाता है और इन वस्तुओं की बारिकियों को शिक्षक अपने कथन द्वारा स्पष्ट करता है और छात्र उसका ज्ञान सरलता से प्राप्त कर लेते हैं।

शीशे की स्लाइड्स टूट भी सकती है अतः स्लाइड्स फोटोग्राफी की फिल्म के ऊपर भी बनाई जा सकती है इन्हें फिल्म स्ट्रिप्स कहते हैं। ये टिकाऊ होती हैं। आवश्यकतानुसार उन्हें परदे पर स्थिर रख कर अध्यापक उनसे सम्बन्धित प्रमुख बातें बता सकता है। फिल्म स्ट्रिप का एक दोष है कि यदि अध्यापक फिल्म के किसी एक भाग को दिखाना चाहे तो उसे बड़ी कठिनाई होती है।

टिप्पणी--अध्यापक छात्राध्यापकों को यदि कहीं आसपास प्रोजेक्टर व फिल्म स्ट्रिप स्लाइड्स यदि उपलब्ध हो तो दिखायें तथा उनका प्रयोग भी समझाएं।

टेपरेकार्डर--यह भी एक महत्वपूर्ण उपकरण है । इसमें कोई भी ध्वनि भरी जा सकती है और उसे पुनः सुना जा सकता है ।

इसका प्रयोग बालकों को शुद्ध उच्चारण का अभ्यास कराने में, महापुरुषों के भाषण सुनवाने में किया जा सकता है ।

टिप्पणी--यह गांव शहर सब जगह सम्भ्रान्त व्यक्तियों के पास मिल सकते हैं । अध्यापक को चाहिये कि वह छात्राध्यापकों को उन्हें लगाकर दिखायें ।

वीडियो टेप--जैसा कि नाम के स्पष्ट है इसमें भी ध्वनि टेप की जाती है । वह भारत में कहीं देखने को कठिनाई से ही मिलेगा ।

अध्यापक के लिए निर्देश--

ऐपीडायस्कोप, प्रोजेक्टर, टेपरेकार्डर व वीडियोटेप, भारत जैसे गरीब देश के स्कूलों में प्रयोग होने वाले सहायक सामग्री नहीं है । अतः इनका प्रयोग विधि तथा प्रयोग करने में रखी जाने वाली सावधानियों को छात्राध्यापकों को बताना उचित न होगा ।

पाठ—सात

समवाय पाठ

1—अर्थ—सभ्यता के विकास के साथ-साथ शिक्षा का क्षेत्र व्यापक होता जा रहा है तथा नये-नये विषयों का जन्म होता जा रहा है। अल्प समय में सभी विषयों के बारे में जानकारी प्राप्त कर पाना छात्रों के लिए बोझिल ही नहीं बल्कि कठिन होता जा रहा है। यदि ध्यान से देखें तो पता चलता है कि सभी विषय किसी न किसी रूप में एक दूसरे से सम्बन्धित मालूम होते हैं। ये विषय एक निश्चित लक्ष्य को लेकर पढ़ाये जाते हैं। ये सभी मिलकर छात्र के अनुभव, ज्ञान या कुशलता में वृद्धि करते हैं। कहीं-कहीं पर यह सम्बन्ध इतना गहरा होता है कि एक विषय को पढ़ाने से दूसरा स्वतः स्पष्ट हो जाता है। परन्तु हमारे विद्यालयों में विषयों को अलग-अलग इस प्रकार पढ़ाया जाता है कि छात्रों का ध्यान उस सम्बन्ध की ओर नहीं जा पाता है। इस सम्बन्ध में गिबन महोदय ने कहा है—"तथ्य और विचार मस्तिष्क में केवल तभी वास्तविक या उपयोगी प्रभाव डालते हैं जब कि मस्तिष्क दूसरे तथ्यों तथा विचारों के साथ उन्हें क्रमबद्ध तथा सम्बन्धित नहीं कर लेता जैसे वे उत्पन्न होते हैं।" अतः शिक्षा विदों का मत है कि यदि किसी एक विषय को पढ़ाते समय यदि छात्रों का ध्यान उस विषय का दूसरे विषयों के सम्बन्ध की ओर आकर्षित कर दिया जाय तो वह विषय उनके लिए अधिक सरल, स्पष्ट और बोधगम्य हो जाता है और साथ-साथ उन्हें अन्य विषयों का भी ज्ञान हो जाता है। इसी प्रकार जीवन का शिक्षा से गहरा सम्बन्ध है।

विभिन्न विषयों का शिक्षण करते समय यदि उसके प्रत्येक अंगों को जीवन से जोड़कर पढ़ाया जाय तो वह विषय अधिक सरल एवं उपयोगी हो सकता है। इसलिए विभिन्न विषयों को जीवन से तथा दूसरे विषयों से सम्बन्धित करके पढ़ाना उचित होगा। इस प्रकार कि शिक्षा को 'समवाय शिक्षा' या 'ज्ञानुबन्ध शिक्षा' कहते हैं और इस प्रकार के पाठों को समवाय पाठ कहा जाता है।

विभिन्न विषयों के शिक्षण के भार को कम करने की इस विधि का मनोवैज्ञानिक आधार है। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य किसी अनुभव या ज्ञान को पूर्ण इकाई के रूप में ग्राह्य करता है न कि भिन्न-भिन्न अंशों में। इसलिए सीखने में हमारा प्रयास पूर्ण से अंश की ओर होना चाहिये। इस सम्बन्ध में बी० डी० भाटिया ने स्पष्ट करते हुए लिखा है—

The Psychological justification of corelation lies in the fact that a child learns a thing as a whole, as greatest more easily, He welcomes experiences as a unity and not as a collection of separate unconnected fragments.

वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये भी यह आवश्यक प्रतीत होता है कि सीमित साधनों के अन्दर इस विधि को अपना कर बालक को अधिकतम ज्ञान दिया जा सकता है। इससे बालकों का दृष्टिकोण विशाल हो जाता है और उनकी बुद्धि में लोच आ जाता है साथ ही समय की बचत होती है।

महत्व—

(1) पाठ्यक्रम को हल्का करना—शिक्षा के प्रसार एवं ज्ञान के विस्फोट के कारण पाठ्यक्रम का भार बढ़ता जा रहा है। एक सीमित समय के अन्दर सभी विषयों को पढ़ा देना कठिन है। अतः उक्त परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि सीमित समय एवं साधनों में सभी बातों से छात्रों को परिस्थित द्वारा ज्ञान दिया जाय। यह तभी संभव है जब विषयों को एक दूसरे से सम्बन्धित करके पढ़ाया जाय। इसी दृष्टिकोण से वैज्ञानिक विषयों को साधारण विज्ञान और सामाजिक विषयों को सामाजिक अध्ययन के रूप में अब पढ़ाया जाता है। अतः समवाय का पहला उद्देश्य पाठ्यक्रम को हल्का करना है।

(2) व्यवहारिक ज्ञान देना---इसका दूसरा उद्देश्य छात्रों को व्यवहारिक ज्ञान देना है। विभिन्न विषयों तथा उनके पाठों को सम्बन्धित करके पढ़ाने से उन विषयों के शिक्षण की व्यावहारिकता का बोध हो जाता है। इसी प्रकार उन्हें जीवन से सम्बन्धित करके पढ़ाने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे जीवन यापन तथा समाज के साथ अनुकूलन में किस प्रकार सहायता करते हैं। इससे छात्रों को विषयों को शिक्षा का जीवन के लिए उपभोग की सही जानकारी हो जाती है। ऐसा करने से विषय भी सरल हो जाता है और छात्र उनके पढ़ने में रुचि लेने लगते हैं। इस प्रकार समवाय पाठ छात्रों को व्यवहार कुशल बनने में तथा जीवनोपयोगी ज्ञान देने में सहायक होते हैं।

(3) संकीर्ण विशिष्टीकरण के दोषों से मुक्ति---विभिन्न विषयों के शिक्षण करने वाले अध्यापक उन विषयों के विशेषज्ञ होते हैं। ऐसा करने से वे अपने विषय का ही शिक्षण करते हैं। इससे छात्र ज्ञान के समग्र रूप से परिचित नहीं हो पाते।

विभिन्न विषयों के अलग-अलग उद्देश्य होते हैं जिससे शिक्षा के मुख्य उद्देश्यों की अवहेलना हो जाती है। सम्बन्ध शिक्षा उक्त दोषों को दूर कर विशिष्टीकरण की संकीर्णता से छात्रों की रक्षा करती है और छात्र यह समझने लगते हैं कि सभी विषय उपयोगी हैं।

(4) ज्ञान के समग्र रूप से परिचित होना---ज्ञान एक इकाई है। सभी विषय इसके अभिन्न अंग हैं। शिक्षा का उद्देश्य बालकों को ज्ञान की एकता से परिचित कराना है। यह तभी संभव है जब विभिन्न विषय अलग-अलग न पढ़ा कर एक दूसरे से सम्बन्धित करके पढ़ाये जाय। बालक के सर्वांगीण विकास हेतु भी पाठ्य विषयों में समन्वय स्थापित करना आवश्यक है अतः उसे सम्पूर्ण वस्तु का ज्ञान करा कर ही उसके अंगों का ज्ञान कराना चाहिये।

(5) समय की बचत---जैसे कि ऊपर बताया गया है ज्ञान का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। छात्र को उससे परिचित कराने के लिए समय बहुत ही कम है। इसलिए यह आवश्यक है कि थोड़े समय में छात्र को अधिकतम जानकारी दी जा सके। यदि विषयों या पाठों को एक दूसरे से सम्बन्धित करके पढ़ाया जाय तो इस उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है और समय की बचत होती है शिक्षक भी एक दूसरे के परिश्रम से लाभ उठा लेते हैं।

(6) पाठ को रोचक बनाना---कभी-कभी एक विषय की सामग्री को लगातार पूरे घंटे बनाने से नीरसता आ जाती है। यदि उस विषय को पढ़ाते समय उसकी विषय वस्तु को उससे सम्बन्धित दूसरे विषय से जोड़ दिया जाय तो इससे पाठ और भी रोचक, सजीव और मनोरंजक बन जाता है। इस प्रकार से सीखा हुआ पाठ भी स्थायी हो जाता है।

समवाय के प्रकार---समन्वय निम्न प्रकार से किये जा सकते हैं।

(1) एक ही विषय के विभिन्न पाठों का समन्वय।

(2) विभिन्न विषयों का समन्वय।

(3) शिक्षा का जीवन से समन्वय।

(1) एक ही विषय के विभिन्न पाठों का समन्वय---इस प्रकार के समन्वय का उद्देश्य उसी विषय के किसी पूर्व पठित पाठ से नये पाठ को जोड़ना है। पूर्व पाठ से जोड़ने से अगला पाठ सरल एवं बोधगम्य हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि हम भूगोल विषय में किसी क्षेत्र की कृषि के बारे में बताना चाहते हैं तो उसको धरातलीय, बनावट, मिट्टी, जलवायु आदि से सम्बन्ध जोड़ना है। इसी प्रकार भाषा शिक्षण में रचना और व्याकरण में सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।

(2) विभिन्न विषयों का समन्वय---पाठ्यक्रम में निहित विभिन्न विषयों का एक दूसरे से कुछ न कुछ सम्बन्ध होता है। अतः अध्यापक को पढ़ाते समय उस सम्बन्ध को स्पष्ट कर देना चाहिये। जैसे भूगोल के अन्तर्गत प्राकृतिक दशाओं, सीमा आदि

को पढ़ाते समय उनका ऐतिहासिक घटनाओं पर पड़े प्रभाव को स्पष्ट किया जा सकता है। इसी प्रकार भाषा का भूगोल से, भूगोल का अर्थशास्त्र से, इतिहास और नागरिकशास्त्र, विज्ञान और गणित आदि। इस प्रकार एक विषय को भली प्रकार समझने के लिए अन्य विषयों की सामग्री का उपयोग किया जाना चाहिये। इस प्रकार का समन्वय दो प्रकार से हो सकता है। (क) आकस्मिक समन्वय किसी विषय को पढ़ाते समय अपनी व्याख्या को स्पष्ट करने के लिए अध्यापक अचानक अन्य विषयों की सामग्री का उपयोग करता है। (ख) व्यवस्थित समन्वय—जिस समन्वय की योजना पहले से तैयार कर ली जाती है उसे व्यवस्थित समन्वय कहते हैं। इस प्रकार की समन्वय की योजना पहले से तैयार कर ली जाती है। शिक्षक पढ़ाते समय पहले से निर्धारित योजना के अनुसार दूसरे विषयों की सामग्री का प्रयोग करके विषय को स्पष्ट करता है। जैसे बागवानी के द्वारा गणित का ज्ञान, भाषा के पाठों में अन्तर्निहित कथाओं के द्वारा इतिहास का ज्ञान, कताई-बुनाई के द्वारा गणित अथवा भाषा का ज्ञान आदि।

(3) शिक्षा का जीवन से समन्वय—वह शिक्षा अधूरी जिसका हमारे जीवन से सम्बन्ध नहीं है। इसलिए शिक्षा के उद्देश्य इस बात को ध्यान में रखकर प्रतिपादित किये गये हैं। अतः हमें विभिन्न विषयों का शिक्षण करते समय जीवन से सम्बन्धित करके ही पढ़ाना चाहिये जिससे बालक यह अनुभव कर सके कि जो कुछ वे अध्ययन कर रहे हैं वे जीवनोपयोगी हैं और जीवन से उसका सम्बन्ध है। इस प्रकार से वास्तविक जीवन से सम्बन्धित हो जाने पर बालक उसमें रुचि लेने लगता है और उसका ग्रहण करना बालक के लिए सरल हो जाता है। वे इस योग्य हो जाते हैं कि जीवन की विविध समस्याओं को हल कर सकें। अध्यापक को चाहिए कि वह दिन प्रतिदिन की घटनाओं एवं समस्याओं को उचित अवसर पर विभिन्न विषयों तथा पाठों से सम्बन्धित करता जाय। इस प्रकार दिया हुआ ज्ञान अधिक स्थायी होगा। अतः सफल जीवनयापन के लिए विभिन्न विषयों का ज्ञान बालक के परिवेश तथा जीवन से सम्बन्धित करके दिया जाना चाहिये।

समन्वय स्थापन में ध्यान देने योग्य बातें—विभिन्न विषयों अथवा पाठों में समन्वय स्थापित करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए—

(1) अध्यापक को चाहिए कि वह स्वाभाविक रूप से समन्वय स्थापित करें अनावश्यक रूप से नहीं। समन्वय उसी सीमा तक स्थापित करना चाहिए, जहां तक वह पाठ को सरल एवं बोधगम्य बनाने में सहायक हो।

(2) समन्वय स्थापित करते समय बालकों की रुचि एवं उनकी मानसिक क्षमता एवं योग्यता को ध्यान में रखा जाना चाहिए। उनका चयन बालकों के रुचि एवं स्तर के अनुकूल होना चाहिए।

(3) पूर्व निर्धारित कार्यक्रम को ध्यान में रख कर समन्वय स्थापित करना चाहिए।

(4) शिक्षा के उद्देश्यों को ध्यान में रख कर समन्वय स्थापित किया जाय।

(5) समन्वय स्थापित करते समय सैद्धांतिक ज्ञान का सम्बन्ध व्यवहारिक ज्ञान से जोड़ना चाहिए।

(6) आवश्यकता से अधिक उदाहरण देकर विषय तथा पाठ को बोझिल नहीं बनाना चाहिए।

समस्यायें—समन्वय स्थापित करने में अनेक कठिनाइयां हैं—(1) समय चक्र का बन्धन—पाठशालाओं में पढ़ाये जाने वाले विषय समय विभाजक चक्र से बंधे। प्रत्येक विषय के लिए समय एवं घंटे निर्धारित हैं। अतः इस बन्धन में विभिन्न विषयों में समन्वय स्थापित करने के लिए समय नहीं मिल पाता है। अतः आवश्यक है कि समय सारिणी बनाते समय समवाय पाठों के लिए भी समय निर्धारित करने चाहिए।

(2) अध्यापक का अल्प ज्ञान–योग्य अध्यापकों की कमी होने के कारण सुयोग्य अध्यापक नहीं मिल पाते हैं । अल्प ज्ञान वाला अध्यापक किसी प्रकार घंटा बिता देना अपना कर्त्तव्य समझता है न तो स्वयं अध्ययन द्वारा अपना ज्ञान बढ़ाता है और न ही इस बात का प्रयास करता है । जिसका परिणाम यह होता है कि उचित समन्वय स्थापित करने में वह असफल रहता है । अतः अध्यापक को निरन्तर स्व–अध्ययन के द्वारा अपना ज्ञान बढ़ाना चाहिए और सूझ–बूझ एवं विवेक के द्वारा नए ज्ञान को दिन प्रतिदिन की समस्याओं आदि से सम्बन्धित करना चाहिए । जैसे नागरिकशास्त्र पढ़ाते समय में राजनैतिक घटनाओं से सम्बन्धित करना अर्थशास्त्र पढ़ाते समय आर्थिक योजनाओं आदि से सम्बन्धित करना ।

(3) विशिष्ट अध्यापक––विद्यालयों में विभिन्न विषय अलग–अलग विषय विशेषज्ञों द्वारा पढ़ाए जाते हैं । ऐसे अध्यापक प्रायः दूसरे विषयों की अवहेलना करके अपने विषय को पढ़ाने की ही चिन्ता करते हैं । इससे शिक्षण का छात्रों पर कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता है और न ही वे उनको उपयोगी जान पड़ते हैं । अतः उचित समन्वय हेतु आवश्यक है कि ऐसी शिक्षण विधि अपनाई जाय, जिनके माध्यम से उचित सम्बन्ध स्थापित हो सके । नवीन शिक्षण विषयों में बेसिक शिक्षा में क्राफ्ट के माध्यम से विभिन्न विषयों के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया है । प्रोजेक्ट प्रणाली द्वारा भी विभिन्न विषयों को एक स्कूल में पिरोने का प्रयास किया गया है ।

पाठ–आठ

दृढ़ीकरण की युक्तियां (Fixing devices)––शिक्षाविदों ने पाठशालाओं में शिक्षण हेतु अनेक सिद्धान्तों, विधियों, प्रणालियों एवं सूत्रों का प्रतिपादन किया है, जिनका अनुसरण करके शिक्षक अनेक विषयों के ज्ञान को छात्रों तक पहुंचाने का प्रयास करता है। वे ही शिक्षण विधियां या रीतियां प्रभावपूर्ण एवं उपयोगी होती हैं जो मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक एवं दार्शनिक आधार पर प्रतिपादित की गई हैं। कुछ युक्तियां ऐसी होती हैं, जिनका मुख्य उद्देश्य नया ज्ञान देना नहीं, बल्कि दिए हुए ज्ञान को छात्रों के मस्तिष्क में फिर से बैठाने अथवा सुदृढ़ करने से होता है। ऐसा करने से दिया हुआ ज्ञात छात्रों के मस्तिष्क में स्थायी हो जाता है, जिससे छात्र इस योग्य हो जाते हैं कि ये नए ज्ञान का प्रयोग नयी परिस्थितियों में कर सकें। इसी कारण इन्हें 'धारण सहायक' या स्थापन युक्तियां भी कहते हैं। ये निम्नलिखित हैं :

1––अभ्यास (Drill)––दृढ़ीकरण की युक्तियों में अभ्यास एक प्रमुख युक्ति है। अभ्यास का अर्थ किसी क्रिया को बार–बार दुहराने से है।

2––आवश्यकता––किसी क्रिया को बार–बार करने से वह दृढ़ होती जाती है। अभ्यास की क्रिया शारीरिक शिक्षा, गणित, भाषा, व्याकरण, चित्रण आदि में उपयोगी होती है। बार–बार अभ्यास के साथ–साथ किसी सीखे हुए ज्ञान को नई समस्याओं के समाधान में भी प्रयोग किया जाता है, जिससे ज्ञान अधिक स्थायी हो जाता है। मानचित्र खींचने, रेखाचित्र बनाने, चित्रण करने में इस क्रिया को बार–बार करना अनिवार्य होता है, क्योंकि बिना इसके बार–बार अभ्यास के उस विषय में दक्षता नहीं प्राप्त हो पाती है। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के खेलों में दक्षता प्रदत्त प्राप्त करने के लिए अभ्यास की प्रक्रिया दुहराई जाती है। भाषा और गणित सीखने में भी बोलने–पढ़ने–लिखने में दक्षता लाने तथा गणित के प्रश्नों का हल कर सकने की क्षमता के पूर्ण विकास बार–बार अभ्यास से ही आ पाती है।

आवश्यक विन्दु––अभ्यास कार्य के सफल एवं प्रभाव पूर्ण बनाने में निम्न विन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है––

(1) अभ्यास बालकों की रुचि, क्षमता के अनुकूल कराना चाहिए।

(2) गणित, व्याकरण, भाषा, खेल, आसन आदि में अभ्यास अधिक कराना चाहिए।

(3) अभ्यास कार्य का सही मूल्यांकन होना आवश्यक है, जिससे आगे के लिए निर्देश मिल सके।

(4) अभ्यास में अनावश्यक रूप से अधिक समय नहीं लगाना चाहिए।

(5) अभ्यास व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों प्रकार से कराना चाहिए।

2––पुनरावृत्ति––दृढ़ीकरण की युक्तियों में पुनरावृत्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। पुनरावृत्ति से तात्पर्य है, सीखे हुये ज्ञान को फिर दुहराने से है। सम्पूर्ण विषय सामग्री को छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत कर चुकने के बाद अध्यापक प्रश्नों के माध्यम से उसे दुहराता है। दूसरे शब्दों में इसे प्रयोग भी कहते हैं। पुनरावृत्ति करने से सम्पूर्ण पाठ की विषय वस्तु छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत हो जाती है, जिससे विषय का ज्ञान स्थायी हो जाता है। इस क्रिया में प्रश्नों द्वारा विश्लेषित पाठों का संश्लेषण करते हैं।

आवश्यकता एवं महत्व--(1) इससे विषय ज्ञान स्थायी हो जाता है ।

(2) पुनरावृत्ति करने से विभिन्न सोपानों में पढ़ाई गई विषय सामग्री में एकता आ जाती है ।

(3) पुनरावृत्ति करने के पश्चात् स्वयं अध्यापक को यह आभास हो जाता है, वह शिक्षण प्रक्रिया में कितना सफल हुआ है और आगे उसे क्या करना है । साथ-साथ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि छात्रों ने कहां तक विषय सामग्री को आत्मसात कर लिया है । इस प्रकार स्पष्ट रूप से अध्यापक एवं छात्रों दोनों के कार्यों का मूल्यांकन हो जाता है ।

कार्य को सफल बनाने के बिन्दु--पुनरावृत्ति को क्रिया को सफल बनाने के लिए अध्यापक को निम्न बिन्दुओं की ओर ध्यान देना चाहिए --

(1) पुनरावृत्ति सम्पूर्ण पाठ की समाप्ति पर करना चाहिये।

(2) पुनरावृत्ति करते समय सम्पूर्ण पाठ के मुख्य-मुख्य स्थलों पर इस प्रकार प्रश्न पूछे जाने चाहिय, जिससे सम्पूर्ण पाठ एक बार पुनः छात्रों के सम्मुख आ जाये ।

(3) पुनरावृत्ति करते समय सभी छात्रों को उत्तर देने का मौका देना चाहिये।

(4) पुनरावृत्ति में कुछ ऐसे प्रश्न भी पूछे जाने चाहिये, जिससे नई परिस्थितियों में दिये हुये ज्ञान की परीक्षा हो सके तथा यह ज्ञात हो सके कि नई समस्याओं के समाधान में यह ज्ञान कहां तक उपयोगी है ।

(5) पुनरावृत्ति करते समय प्रश्न एवं समस्यायें छात्रों के स्तर, रुचि एवं क्षमता के अनुरूप प्रस्तुत की जाय।

(6) पुनरावृत्ति करते समय छात्रों को अपनी जिज्ञासा की संतुष्टि हेतु पर्याप्त अवसर देना चाहिए। उनकी शंकाओं का समाधान अध्यापक को सहानुभूतिपूर्वक करनी चाहिए क्योंकि इससे छात्रों का ज्ञान पूर्ण एवं स्थायी हो जाता है ।

(3) पुनर्निरीक्षण या समीक्षा (Review)--ज्ञान को सुदृढ़ बनाने के लिए पढ़ाए गए पाठ की समीक्षा की जानी चाहिए। समीक्षा से तात्पर्य न तो पाठ को केवल दुहराने से है न ही उसकी आलोचना करने से है । बल्कि इनके साथ-साथ विषय-वस्तु को फिर से छात्रों के मस्तिष्क में पुनर्व्यस्थित ढंग से बैठाने से है । इसमें पाठ के दुहराने के साथ उसकी समीक्षा की जाती है और कुछ नये तथ्य नवीन परिस्थितियों में जोड़ दिए जाते हैं । रिस्क महोदय ने इस सम्बन्ध में कहा है :--

"Review means getting a new view or renewal of an old view to assure a letter view or grasp of relationships stud ed.

इसी सम्बन्ध में बार्सिंग के अनुसार--

"The review connotes not a mere repetition of facts to fix them more firmly in mind but rather a new view of these facts different setting that results in new understandings, changed attitudes or different behaviour patterns.

महत्व--(1) पाठ के शिक्षण के उपरान्त उसकी पूर्ण समीक्षा करने से बालकों के मस्तिष्क में पाठ स्थायी रूप से बठ जाता है ।

(2) उससे छात्रों को नई परिस्थितियों में ज्ञान के प्रयोग का अवसर मिल जाता है ।

(3) समीक्षा करने से छात्रों की जिज्ञासाओं एवं शंकाओं का समाधान हो जाता है ।

(4) इससे छात्रों को कुछ नवीन ज्ञान भी प्राप्त हो जाते हैं ।

कार्य को सफल बनाने के बिन्दु--सफल समीक्षा हेतु निम्न बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए--

(1) समीक्षा छात्रों के स्तर एवं रुचि के अनुकूल की जानी चाहिए ।

(2) विचार विमर्श एवं वार्तालाप के द्वारा दिए गए ज्ञान का प्रयोग नई परिस्थितियों में की जानी चाहिए और छात्रों की शंकाओं एवं जिज्ञासाओं का उचित समाधान होना चाहिए ।

(3) सभी छात्रों को समान अवसर देना चाहिए और साथ ही अध्यापक उनका मार्ग दर्शन करे तथा उनकी सही समीक्षा हेतु उन्हें प्रोत्साहित करें ।

(4) गृहकार्य—स्थापन युक्तियों के अन्तर्गत गृहकार्य का बड़ा महत्व है । अध्यापक कक्षा में शिक्षण के उपरान्त छात्रों को घर के लिए कुछ कार्य दे देता है जैसे प्रश्नोत्तर लिखना, संदर्भ पुस्तकें पढ़ना, पाठ को दुहराना, रेखा चित्र, मानचित्र बनाना, माडल बनाना आदि । इससे छात्र पढ़े हुए पाठ को दुहरा लेते हैं तथा नयी समस्याओं को हल करते हैं । इस कार्य से उन्हें अभ्यास का भी मौका मिल जाता है साथ ही उन्हें अपनी शंकाओं एवं समस्याओं का समाधान भी हो जाता है । अतिरिक्त समय के सदुपयोग का यह एक अच्छा साधन भी है । इससे छात्रों को नवीन खोज करने एवं निष्कर्ष निकालने का भी मौका मिल जाता है । इस प्रकार गृहकार्य से छात्रों का ज्ञान स्थायी रूप से बालकों के मस्तिष्क में बैठ जाता है तथा उनकी शंकाओं का भी समाधान हो जाता है । इससे छात्रों को नवीन तथ्यों की भी जानकारी हो जाती है और उन्हें स्वाध्याय का मौका मिलता है ।

कार्य को सफल बनाने के बिन्दु—गृहकार्य की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए उसके प्रभावी प्रयोग हेतु निम्न बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए :—

(1) छात्रों को गृहकार्य नियमित रूप से देना चाहिये जो लिखित रूप के साथ-साथ क्रियात्मक भी होना चाहिए ।

(2) गृहकार्य का भार छात्रों की रुचि, क्षमता एवं योग्यता के अनुसार ही होना चाहिए ।

(3) गृहकार्य देते समय छात्र की व्यक्तिगत एवं घरेलू परिस्थितियों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए ।

(4) गृहकार्य की मात्रा अधिक न हो अन्य विषयों में दिए जाने वाले गृहकार्य को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए ।

(5) गृहकार्य करने के लिए छात्रों को उचित संदर्भ की ओर उनका ध्यान आकर्षित करना चाहिए एवं उन्हें उपयुक्त सामग्री भी उपलब्ध करायी जाय ।

(6) गृहकार्य में ऐसे प्रश्न एवं समस्यायें दी जाय जिससे छात्रों को स्वाध्याय के लिए उचित प्रोत्साहन मिल सकें ।

(7) अध्यापक को गृहकार्य का नियमित रूप से निरीक्षण करना अनिवार्य है जिससे आगे कार्य के लिए प्रोत्साहन मिल सके ।

(8) ऐसे छात्रों को जो नियमित रूप से गृहकार्य पूरा करते हों तथा अच्छा कार्य करते हों उन्हें पुरस्कृत करना चाहिए ताकि इससे अन्य छात्रों को कार्य करने की प्रेरणा मिल सके ।

(5) उपचारात्मक शिक्षण—दृढ़ीकरण की युक्तियों में उपचारात्मक शिक्षण एक नई विधा है । इसके अन्तर्गत पिछड़े अथवा कमजोर बालकों का पता लगाकर उसको पिछड़ेपन के कारणों का निदान किया जाता है और तद्नुरूप उनका शिक्षण किया जाता है । ऐसे शिक्षण को उपचारात्मक शिक्षण कहा जाता है । उपचारात्मक शिक्षण के मुख्य उद्देश्य ज्ञान प्राप्ति में बाधा स्वरूप उपस्थित होने वाली कठिनाइयों का निराकरण करके ज्ञान को छात्रों के मस्तिष्क में बैठाना है । इससे छात्रों की शिक्षक और उनकी मानसिक उलझनें समाप्त हो जाती हैं ।

सम्प्राप्ति परीक्षण—उपचारात्मक शिक्षण हेतु पहले सभी छात्रों की सम्प्राप्ति परीक्षा ली जाती है और इसके आधार पर कमजोर एवं पिछड़े हुए छात्रों का पता लगाया जाता है । यह परीक्षण लिखित एवं मौखिक दोनों प्रकार की हो सकती है । इसके आधार पर कक्षा में पिछड़े एवं कमजोर छात्रों को छांट लिया जाता है ।

निदानात्मक परीक्षण--पिछड़े एवं कमजोर छात्रों का पता लगाने के बाद छात्रों का निदानात्मक परीक्षण किया जाता है। इसके अन्तर्गत छात्रों की कमजोरी एवं पिछड़े होने के कारणों का निदान किया जाता है। शैक्षणिक निदान वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में आई हुई बालकों की कठिनाइयों का सुधार करने के लक्ष्य से ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार शैक्षणिक निदान का प्रमुख उद्देश्य बालक की कठिनाइयों का पता लगाना और उसके उपचार के लिए व्यवस्था करना है। शैक्षणिक निदान से छात्र और अध्यापक दोनों के दोषों या कठिनाइयों को जाना जाता है जिससे वे पुनः न बढ़ने पावें। ये दोष अनेक प्रकार के हो सकते हैं।

कार्यान्वयन--निदानात्मक परीक्षण के उपरांत उपचारात्मक शिक्षण किया जाता है। निदानात्मक परीक्षण द्वारा ज्ञात सभी कठिनाइयों एवं दोषों को दृष्टिगत रखते हुए अध्यापक छात्रों के लिए उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था करता है। शैक्षणिक उपचार के द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि बालक जो गल्तो एक बार कर देते हैं। वह फिर न करें। उपचारात्मक शिक्षण हेतु छात्रों की सामूहिक एवं व्यक्तिगत दोनों प्रकार की व्यवस्था की जा सकती है। एक ही प्रकार के दोष वाले छात्रों का शैक्षणिक उपचार एक साथ की जा सकती है। इसी प्रकार शैक्षणिक उपचार कक्षा में तथा कक्षा के बाहर भी किया जा सकता है। अध्यापक ऐसे छात्रों से व्यक्तिगत सम्पर्क रखकर सुधार कर सकता है। पर यदि उस सामान्य छात्रों के समूह में रखकर कक्षा के अन्दर ही सुधारने का प्रयास किया जाय तो अधिक सफलता मिल सकती है।

पाठ--नौ

वैयक्तिक एवं सामूहिक शिक्षण

भूमिका--शिक्षण विधियों एवं पद्धतियों में देश-काल के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। समाज के विभिन्न संघटकों के विकास के साथ-साथ शिक्षा-दर्शन में भी अनेक परिवर्तन होते रहे हैं। नये मूल्यों के साथ नई मान्यताओं का विकास हुआ है। इसका प्रभाव शिक्षण सिद्धान्तों के विभिन्न संकल्पनाओं पर भी पड़ा है और ऐसा स्वाभाविक भी है। संभवतः सामाजिक विकास के प्रारम्भिक चरण में शिक्षण का स्वरूप वैयक्तिक ही था। परन्तु जैसे-जैसे सामाजिक संगठनों में परिवर्तन हुआ सामूहिक शिक्षण पर अधिक बल दिया जाने लगा। सामूहिक शिक्षण की सीमाओं के प्रति जागरुक होने के कारण ही अक्सर शिक्षाविदों ने वैयक्तिक शिक्षण के महत्व पर बल दिया। कभी-कभी इन दोनों मतों को लेकर शिक्षाविदों में काफी विवाद हुए हैं। अनेक प्रश्न उठे हैं--शिक्षा व्यक्ति के लिए है या समाज के लिये, शिक्षा पर व्यक्ति का प्रथम अधिकार होना चाहिए या समाज का, शिक्षा अच्छे व्यक्तियों के निर्माण के लिए है अथवा सामान्य नागरिकों के लिए आदि अनेक प्रश्न हैं जो सैद्धान्तिक रूप से जुड़े हैं। वैयक्तिक एवं सामाजिक शिक्षण के अर्थ, इनकी आवश्यकता, इनकी विशेषतायें और इनकी सीमायें ज्ञात करके ही हम इस सम्बन्ध में सामान्य निष्कर्ष निकाल सकते हैं। वस्तुतः दोनों का सामंजस्य ही शिक्षण सिद्धान्त का एक सुदृढ़ आधार हो सकता है।

वैयक्तिक शिक्षण

प्रत्येक बालक को अलग-अलग शिक्षा देना वैयक्तिक शिक्षण है। प्राचीन काल से लेकर आज तक शिक्षण को इस विधा पर विचार होता रहा है। उपनिषद काल में ऋषि गुरु अपने शिष्य को वैयक्तिक शिक्षण देता था। यूनान में सोफिस्टो (Sophisto) ने भी वैयक्तिक शिक्षण पर ही बल दिया, रुसो, फ्रोबेल, पेस्टालाजी, नन आदि शिक्षा विदों ने समय-समय पर वैयक्तिक शिक्षण की मान्यता को स्वीकार कर उसके पक्ष में अपना समर्थन दिया है।

वैयक्तिक शिक्षण का अर्थ--

सामान्यतः बालकों को स्वतन्त्र रूप से उनकी योग्यता, रुचि प्रवृत्ति एवं आवश्यकता के अनुसार शिक्षा देकर उनका सर्वांगीण विकास करना ही व्यक्तिगत शिक्षण का उद्देश्य है। व्यक्ति स्वयं में एक सत्ता है। अतः वह सबसे महत्वपूर्ण इकाई है। इसका विकास ही शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए। टी० पी० नन के अनुसार--"मानव जगत में प्रत्येक अच्छाई व्यक्तिगत पुरुषों एवं स्त्रियों के स्वतन्त्र कार्यों द्वारा आती है। अतः शिक्षा पद्धति को इस सत्य के अनुरूप बनाया जाना चाहिए। × शिक्षा को ऐसी दशायें उत्पन्न करनी चाहिये जिनसे वैयक्तिता का पूर्ण विकास हो सके और व्यक्ति मानव जीवन को अपना मौलिक योगदान दे सके"। इस प्रकार व्यक्तिगत शिक्षण बालक को स्वतन्त्र रूप से अपनी प्रगति का अवसर प्रदान करने के पक्ष में है। व्यक्ति ही प्रत्येक वस्तु का आधार है। ऐसी दशाओं का शिक्षा द्वारा आयोजन करना चाहिये जिनसे व्यक्ति का व्यक्तित्व पूर्णरूप से विकसित हो सके। वैयक्तिक शिक्षण प्रत्येक बालक पर शिक्षक के व्यक्तिगत ध्यान अपेक्षा करता है। यूकेन महोदय ने इसे आध्यात्मिक पुट देकर आध्यात्मिक वैयक्तिता को संज्ञा दी है। उनके अनुसार शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्य का अर्थ है व्यक्ति में उत्तमतम व्यक्तित्व तथा आध्यात्मिक वैयक्तिता का विकास करना है।

वैयक्तिक शिक्षण की विधियां :--

सामान्यतः वैयक्तिक शिक्षण के दो रूप हैं :--

(1) आत्माभिव्यक्ति--जिसका अर्थ है व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार कार्य एवं व्यवहार का अवसर प्रदान करना जिससे वह स्वतन्त्र रूप से विकसित हो सके। यद्यपि सैद्धान्तिक रूप से आत्माभिव्यक्ति का अवसर प्राप्त होना एक-एक स्वस्थ व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है। परन्तु इसमें यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इससे स्वच्छन्दता को असीमित बढ़ावा न मिल जाय, अन्यथा अनेक पाशविक प्रवृत्तियां निरंकुश होकर समाज के सांस्कृतिक मूल्यों के लिये घातक सिद्ध हो सकती हैं।

(2) आत्मानुभूति--जिसका अर्थ है व्यक्ति को ऐसे अवसर दान करना जिससे वह अपने बारे में ठीक ज्ञान प्राप्त करने अपना विकास कर सके। जब व्यक्ति अपने बारे में ज्ञान प्राप्त करेगा तो उसे उचित-अनुचित, उपयुक्त-अनुपयुक्त, ग्राह्य-अग्राह्य, करणीय-अकरणीय का भी ज्ञान होगा और उसमें अपनी स्वच्छन्द-निरंकुश प्रवृत्तियों को नियन्त्रित करने की इच्छा होगी। आत्मानुभूति करके व्यक्ति समाज तथा सामाजिक वातावरण के महत्व को स्वीकार करता है। प्रायः वैयक्तिक शिक्षण के इस दूसरे रूप को ही हम अधिक उचित कहते हैं।

वैयक्तिक शिक्षण का महत्व गुण

(1) वैयक्तिक शिक्षण में बालक को क्रियाशील होने का पूरा-पूरा अवसर मिलता है।

(2) यह प्रणाली अत्यन्त मनोवैज्ञानिक है। बालक की प्रवृत्तियों के अनुसार विकास।

(3) बालक को अपनी गति के अनुसार प्रगति करने का अवसर मिलता है।

(4) बालक को हर प्रकार की स्वतन्त्रता रहती है। ज्ञान उस पर आरोपित नहीं किया जाता।

(5) विभिन्न योग्यताओं, बौद्धिक स्तरों तथा रुचियों के छात्र अपनी इच्छा, सुविधा तथा शारीरिक क्षमता के अनुसार कार्य कर सकते हैं।

(6) प्रतिभावान तथा मन्द बुद्धि अर्थात् विभिन्न मानसिक स्तरों के बालकों पर उनकी आवश्यकतानुसार ध्यान दिया जा सकता है।

(7) शिक्षक अपने को प्रभावित कर सकता है, उन्हें प्रेरणा दे सकता है।

(8) अध्यापक के सहयोग से छात्र पिछड़ा हुआ कार्य भी पूरा कर सकता है।

(9) यदि किसी बात के समझने में कठिनाई हो तो शिक्षक की सहायता से आसानी से उसे समझाया जा सकता है।

(10) बालक की रुचि, स्वभाव तथा योग्यता के अनुसार शिक्षा दी जा सकती है।

(11) शिक्षक का उत्तरदायित्व बढ़ जाता है और वह अपनी सारी शक्तियाँ लगाकर शिष्य को योग्यतम बनाने की चेष्टा करता है।

(12) बालक अपनी प्रगति की गति भली भाँति समझ लेता है। इस सम्बन्ध में उसकी धारणायें दूषित नहीं होने पाती।

(13) व्यक्तिगत शिक्षण समय के विभाजन को अधिक उचित। अपेक्षित ढंग से करने में सहायता पहुंचाता है।

वैयक्तिक शिक्षण की सीमायें (दोष) :--

(1) अत्यन्त व्यय पूर्ण है । बहुत से शिक्षकों की आवश्यकता ।

(2) बालक में व्यक्तिवाद को प्रोत्साहन ।

(3) इतनी अधिक मात्रा में योग्य अध्यापकों के मिलने में कठिनाई ।

(4) सामाजिकता की भावना विकसित नहीं हो पाती । सामाजिक विघटन की संभावना ।

(5) कविता-पाठ संगीत आदि विषयों में जहां सामूहिक अध्ययन उसे रुचिपूर्ण एवं आनन्ददायक बनाता है या जहां टोली-कार्य होता है । जैसे बालचर, एन० सी० सी० आदि वहां व्यक्तिगत शिक्षण उपयोगी नहीं हो पाता ।

(6) आपस में परस्पर मिलकर कार्य करते हैं । Competition से प्रोत्साहित होकर आगे बढ़ने का अवसर मिलता है ।

(7) प्रत्येक छात्र के लिये अलग-अलग सामग्री एवं सुविधायें जुटाना कठिन होता है ।

(8) व्यक्ति के पर्यावरण एवं मनुष्य के सामाजिक स्वरूप की अपेक्षा होती है ।

(9) वास्तविक जीवन के लिये अव्यवहारिक है ।

शिक्षक के लिये निर्देश--वैयक्तिक शिक्षण की विधि तथा इसके गुण और दोष स्पष्ट करने के लिए अध्यापक कुछ क्रियायें उदाहरण के रूप में कर सकता है । जैसे कक्षा के एक विद्यार्थी को कई विषय समझाया जाय । विद्यार्थी को पृथक किया जा सकता है । इसके बाद उस विद्यार्थी से तथा अन्य विद्यार्थियों से उसी विषय पर कुछ प्रश्न पूछे जायें । सम्भवतः वह विद्यार्थी उस विषय को अधिक अच्छी तरह समझ लेगा । (या यदि उसकी रुचि आदि न होगी तो इसके विपरीत होगा) परन्तु इससे निष्कर्ष निकलेगा कि इस विधि में कितना अधिक समय लगता है । पर एक विद्यार्थी को ऐसे ही शिक्षण देना क्या सम्भव हो सकेगा ? क्या अनेक विषयों के बारे में एक या इतने विद्यार्थियों को पूरा ज्ञान कराया जा सकता है । यदि इतने विद्यार्थियों का इतने विषयों का ज्ञान कराना हो तो कितने शिक्षकों तथा कितने कक्षों और कितने समय की आवश्यकता होगी । विद्यार्थियों में इस प्रकार के प्रश्न उठाकर उनके उत्तर उनसे दिलाने से उनमें विषय के प्रति रुचि उत्पन्न होगी ।

अध्यापक यह भी समझा सकते हैं कि प्रश्नोत्तर शिक्षण विधि वैयक्तिक शिक्षण के लिए अधिक उपयुक्त होगी और ऐसे शिक्षण का मूल्यांकन निबंधात्मक प्रश्नों के अतिरिक्त वस्तु-निष्ठ प्रश्नों द्वारा तथा व्यक्तिगत निरीक्षण द्वारा किया जा सकता है । इनके उदाहरण देकर भी इस तथ्य को स्पष्ट किया जा सकता है ।

सामूहिक शिक्षण

सामूहिक शिक्षण को ही सामाजिक शिक्षण या कक्षा शिक्षण भी कहते हैं । जैसे-जैसे सामाजिक संगठनों का विकास हुआ और व्यक्ति के समूह के हित में ही अपना हित समझना प्रारम्भ किया । सामूहिक शिक्षण की मान्यता गुरुकुलों, पाठशालाओं, मकतबों, स्कूलों के रूप में बढ़ी । बढ़ती हुई जनसंख्या, शैक्षणिक साधनों की कमी तथा बदलते हुये सामाजिक मूल्यों ने इसे आगे बढ़ाया । आज सामूहिक शिक्षण हमारी शिक्षा व्यवस्था का एक आवश्यक अंग है ।

सामूहिक शिक्षण का अर्थ--

बालकों को एक या कक्षा में शिक्षा देना ही सामूहिक शिक्षण है । इसकी संकल्पना है कि समाज का स्थान व्यक्ति से ऊंचा है । हमें अपने सामाजिक हित को व्यक्तिगत हितों के ऊपर रखना चाहिये और आवश्यकता पड़ने पर सामाजिक हितों को प्राथमिकता देनी चाहिए । प्रोफेसर बंगले तथा डा० डयूबी ने इसे 'सामाजिक कुशलता' कहा है अर्थात् शिक्षा

द्वारा व्यक्ति को सामाजिक रूप से कुशल बनना चाहिये । उसे अच्छा नागरिक बनना चाहिये । ऐसे प्रशिक्षित व्यक्ति अपने साथी नागरिकों तथा राष्ट्रीय हितों को सम्मान तथा वरीयता देते हैं ।

सामूहिक शिक्षण की विधियां--

साधारणतः सामूहिक शिक्षण के तीन रूप होते हैं --

(1) सामान्य (simple) रूप जिसमें यह विश्वास किया जाता है कि सामूहिक शिक्षण द्वारा सामाजिकता और सहयोग उत्पन्न होता है । व्यक्ति अपनी वैयक्तिकता को सामाजिक नियमों एवं आवश्यकताओं को नियन्त्रण में रखता है ।

(2) उग्र (extreme) रूप जिसमें सामूहिक शिक्षण की संकीर्ण एवं साधारण व्याख्या होती है और राज्य की सत्ता सर्वोच्च मानी जाती है । प्राचीन स्पार्टा और नाजी जर्मनी इसके उदाहरण हैं । जहां शिक्षा पर राज्य का पूरा नियन्त्रण था ।

(3) उदार (liberal) रूप जिसमें शिक्षण को 'समाजसेवा' के लिये या 'नागरिकता' के लिये माना जाता है । ग्रेट ब्रिटेन या संयुक्त राज्य जैसे प्रजातन्त्रीय देशों में शिक्षण के इस उदार स्वरूप को मान्यता दी जाती है । शिक्षण का उद्देश्य ही सामाजिक दायित्वों के निर्वाह में सहयोग देना होना चाहिय । भारत में भी शिक्षण के इस उदार स्वरूप को ही मान्यता दी गई है । जहां व्यक्ति और समाज एक दूसरे के पूरक रूप में कार्य करते हैं ।

सामूहिक शिक्षण का महत्व (गुण/पक्ष)--

(1) सामूहिक शिक्षण में कम व्यय होता है । एक समय में एक ही शिक्षक द्वारा अनेक छात्रों को शिक्षा दी जाती है ।

(2) इसमें समय तथा शक्ति का सदुपयोग होता है ।

(3) सामूहिक शिक्षण से प्रतिस्पर्धा एवं प्रतियोगिता की भावना उत्पन्न होती है । जिससे प्रेरित होकर छात्र अपना उत्थान शीघ्रता से कर सकता है ।

(4) अध्यापक निरन्तर सजग तथा सचेष्ट रहता है और अध्यापक कार्य में गौरव का अनुभव करता है ।

(5) बालक दूसरों का अनुकरण कर सद्गुणों का विकास करते हैं ।

(6) कुछ विषय जैसे संगीत, काव्य आदि सामूहिक रूप से पढ़ाने में ज्यादा अच्छे होते हैं ।

(7) छात्र परस्पर विचारों का आदान-प्रदान पर अपनी कार्य कुशलता बढ़ा लेते हैं ।

(8) सामाजिकता, सामूहिकता तथा सहयोग की भावना विकसित होती है ।

(9) संकोची तथा दब्बू छात्र भी दूसरों का अनुसरण कर प्रश्नोत्तर आदि में भाग लेकर अपना संकोच त्याग करते हैं ।

(10) छात्र तथा अध्यापक दोनों का मूल्यांकन सुगमता से निश्चित स्तर से हो जाता है ।

(11) बालक के सामूहिक प्रवृत्ति की सन्तुष्टि होती है ।

(12) सामूहिक कार्य से नये आविष्कारों को प्रेरणा मिलती है ।

सामूहिक शिक्षण की सीमायें (दोष) :--

(1) सामूहिक शिक्षण बालक-केन्द्रित नहीं होता। यह सम्पूर्ण कक्षा को ध्यान में रखकर होता है। समाज मनुष्य से श्रेष्ठ नहीं होता।

(2) इसमें छात्रों की रुचियों, ज्ञान, योग्यताओं अर्थात् व्यक्तिगत भेदों की अवहेलना होती है। इसका आधार मनोवैज्ञानिक होता है।

(3) बालकों को स्वतन्त्रतापूर्वक आत्माभिव्यक्ति का अवसर नहीं मिलता। कला और साहित्य की विद्याओं का विकास कम हो पाता है।

(4) रजिस्टर बनाने, उत्तर-पुस्तिकायें जांचने, फीस लेने आदि में समय का अपव्यय भी होता है।

(5) छात्र अधिकांशतः निष्क्रिय रहते हैं। शिक्षक ही अधिक क्रियाशील होता है। एकांगी शिक्षा होती है।

(6) सामूहिक शिक्षण में प्रायः भ्रमपूर्ण धारणा बनती है कि अध्ययन में प्रगति हुई है जब कि यथार्थतः बहुत कम विद्यार्थी पाठों को भली-भांति समझ पाते हैं।

(7) शिक्षक केवल एक सामान्य स्तर से अध्यापन करता है न तो प्रखर बुद्धि बालक इससे भली-भांति लाभान्वित होते हैं और न मन्द बुद्धि बालक। वस्तुतः शिक्षक की शक्ति का भी अपव्यय होता है।

(8) गृह-कार्य पर अक्सर अधिक बल दिया जाता है क्योंकि कक्षा या समूह में उनके कार्य का निरीक्षण नहीं हो पाता। अक्सर घरों पर गृह कार्य की सुविधाओं का अभाव रहता है, उन्हें उचित निर्देश नहीं मिल पाते और न ही शिक्षक गृह कार्य को भली-भांति जांच पाते हैं।

(9) छात्रों तथा शिक्षक के बीच सम्पर्क बहुत कम हो पाता है।

(10) बालक की आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षा न होने के कारण उनका उचित पथ-प्रदर्शन नहीं हो पाता।

(11) यदि कोई छात्र किसी कारणवश अनुपस्थित रहता है या अपने कार्य में पिछड़ जाता है तो उसे अपना कार्य पूरा करने का अवसर नहीं मिल पाता। अक्सर पिछड़े छात्र और अधिक पिछड़ते जाते हैं।

शिक्षक के लिए निर्देश--सामाजिक शिक्षण को तथा इसके गुण तथा दोष स्पष्ट करने के लिए अध्यापक को कुछ उदाहरण लेकर विषय को समझाना चाहिये। जैसे किसी विषय पर व्याख्यात्मक शैली में एक दस मिनट का धारा प्रवाह व्याख्यान देने के बाद विद्यार्थियों से उस पर प्रश्न किये जाये। अलग-अलग विद्यार्थी अलग-अलग उत्तर देंगे। उनके स्तर भी भिन्न होंगे। कुछ बिल्कुल उत्तर नहीं दे सकेंगे। इससे यह स्पष्ट किया जा सकता है कि विद्यार्थियों के स्तर एवं रुचि की भिन्नता के कारण सामूहिक शिक्षण के परिणाम भिन्न मिलेंगे। विद्यार्थियों से अपने द्वारा दिये गये पाठ (व्याख्यान) के बारे में गुण तथा दोष के बिन्दु पूछ कर उन्हें श्यामपट पर लिख सकते हैं और बिन्दु छूट जायें उन्हें स्वयं स्पष्ट कर सकते हैं इससे विद्यार्थी पाठों के प्रति अधिक जागरुक होंगे।

शिक्षक विद्यार्थियों से वार्तालाप करके, विचार-विमर्श करके इस विधि के विभिन्न पहलू स्पष्ट कर सकता है। मूल्यांकन के लिये निबन्धात्मक प्रश्न लिखित कार्य के रूप में पूछा जा सकते हैं। निरीक्षण कार्य से भी सहायता मिलेगी।

वैयक्तिक तथा सामूहिक शिक्षण का समन्वय--आज के युग में हम समाज विहीन व्यक्ति और व्यक्ति विहीन समाज दोनों ही स्थितियों की कल्पना नहीं कर सकते। व्यक्ति भले ही

स्वयं में एक सत्ता हो परन्तु समाज के हित में ही व्यक्ति का भी हित निहित है। ों समन्वय में ही समस्या का निदान है।

(1) वैयक्तिक एवं सामूहिक शिक्षण में समन्वय की आवश्यकता है। वैयक्तिक एवं सामूहिक शिक्षण में विवाद का मुख्य आधार यह विचारधारा है कि व्यक्ति और समाज एक दूसरे के विरोधी हैं। इस विचारधारा से दोनों का अहित होता है। इस हानि को रोकने का यही उपाय है कि वैयक्तिक एवं सामाजिक शिक्षण का समन्वय किया जाय। इससे व्यक्ति एवं समाज दोनों का हित होगा। व्यक्ति और समाज का बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है और दोनों को एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता।

(2) वैयक्तिक एवं सामूहिक शिक्षण एक दूसरे के पूरक हैं--व्यक्ति और समाज दोनों ही अपनी प्रगति के लिए एक दूसरे का सहारा चाहते हैं। एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व ही न रहेगा। दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। रोस के अनुसार "वैयक्तिकता का विकास केवल सामाजिक वातावरण में होता है"। जहां सामान्य रुचियों और सामान्य क्रियाओं से उसका पोषण हो सकता है। वास्तव में व्यक्ति की वैयक्तिकता और व्यक्तित्व का विकास समाज में ही हो सकता है।

(3) वैयक्तिक एवं सामूहिक शिक्षण के अनुसार ही शिक्षा रूप होना चाहिये। हमें ऐसे शिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिये, जिसमें न तो समाज व्यक्ति को अपना दास बना ले और न व्यक्ति ऐसा स्वच्छन्द हो जाय कि वह सामाजिक नियमों की अवहेलना करने लगे। व्यक्ति और समाज दोनों की स्वतंत्रता ऐसी सीमा बद्ध होनी चाहिये जिससे दोनों का विकास और दोनों का कल्याण हो सके। रेमन्ट ने इसे ही "व्यक्ति की पूर्णता और समाज का कल्याण" कहा है।

इस समन्वय को प्राप्त करने के लिये शिक्षा विदों ने समय-समय पर अनेक सुझाव दिये हैं, जिनका निष्कर्ष निम्न है :

(1) प्रायः कक्षा में 25-30 विद्यार्थी होने चाहिए। इतने विद्यार्थियों की देख-रेख शिक्षक सुगमता से कर लेगा।

(2) प्रत्येक शिक्षक को सप्ताह में 20 घन्टे से अधिक कार्य नहीं दिया जाना चाहिये। यह तभी सम्भव होगा जब शिक्षकों की संख्या बढ़ाई जाय।

(3) प्रभावशाली शिक्षण के लिए कक्षा की साज-सज्जा, आदि सुव्यवस्थित होनी चाहिये।

(4) विद्यार्थियों की रुचि, योग्यता तथा मानसिक क्षमता के अनुसार उन वर्गीकरण कक्षाओं/उन कक्षाओं में करना चाहिये।

(5) शिक्षण के समय शिक्षक दृष्टि प्रत्येक बालक की कठिनाइयों पर होनी चाहिए और उन्हें दूर करने के सम्भव प्रयत्न करने चाहिये।

(6) शिक्षण में विभिन्न प्रकार की सहायक सामग्री का प्रयोग करते रहना चाहिये जिससे शिक्षण एकांगी न हो जाय।

(7) शिक्षकों को चाहिये कि अधिक गृहकार्य न दें। विद्यार्थियों की क्षमताओं के अनुरूप ही उन्हें गृह-कार्य देना उपयुक्त होगा। यह उतना ही हो जिसका मूल्यांकन करने में असुविधा न हो।

(8) शिक्षण की विभिन्न प्रणालियों का प्रयोग समय-समय पर करना उचित होगा। इससे विद्यार्थी की रुचि अध्ययन में बढ़ी रहेगी।

शिक्षक के लिये निर्देश--

शिक्षक को चाहिये कि वह विद्यार्थी को वैयक्तिक एवं सामाजिक शिक्षण के एकांगी होने पर उत्पन्न दोष बताते हुये इनके समन्वय को प्रधानता दे। दोनों विधियों के समन्वय से ही शिक्षण ठीक रूप से हो सकेगा। विभिन्न शिक्षाविद् अन्ततः इसी निष्कर्ष पर पहुंचे। मैकमेन की शिक्षण विधि जिसमें टोली बनाकर शिक्षा दी जाती है। हाल क्वेस्ट की निरीक्षित स्वाध्याय की विधि जिसमें समय चक्र को तीन भागों--प्रस्तावनाकाल समस्या के विवेचन तथा हल में बांटा जाता है तथा टीन शिक्षण आदि इसी प्रकार समन्वय को महत्व देते हैं।

1--विनेश चन्द्र भारद्वाज--बी० टी० सी० शिक्षा दिग्दर्शन (गाइड), विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, अध्याय 2, खण्ड (ख)।

2--एस० एस० माथुर, शिक्षण कला, शिक्षण तकनीक एवं नवीन पद्धतियां, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, अध्याय 14।

3--पी० डी० पाठक एवं जी० एस० डी० त्यागी--शिक्षा के सिद्धान्त, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, अध्याय 5, खण्ड दो।

पाठ --दस

नवीन शिक्षण प्रणालियां

प्रोजेक्ट प्रणाली--इस प्रणाली को शिक्षा में प्रयोग करने का एवं व्यावहारिक रूप देने का श्रेय किलपैट्रिक महोदय को है। उन्होंने प्रोजेक्ट की इस प्रकार परिभाषा दी है 'प्रोजेक्ट वह सहृदय उद्देश्य पूर्ण कार्य होता है जो पूर्ण संलग्नता के साथ सामाजिक वातावरण में किया जाय" इस परिभाषा में 1921 में जो और सुधार किये वह इस प्रकार है--

प्रोजेक्ट सोद्देश्य अनुभव की कोई इकाई, सोद्देश्य क्रिया का कोई उदाहरण है जहां पर आधिपत्य रखने वाला प्रयोजन एक अन्तर्निहित प्रेरणा के रूप में--(1) कार्य के उद्देश्य को निर्धारित करता है, (2) उसकी क्रिया का निर्देशन करता है, (3) उसको आन्तरिक प्रेरणा देता है। प्रोफेसर स्टोवेन्सन के अनुसार "प्रोजेक्ट एक समस्या मूलक कार्य है जो अपनी स्वाभाविक परिस्थितियों के अन्तर्गत पूर्णता को प्राप्त करता है" यह एक समस्यात्मक ढंग से कार्य करने की इकाई है जिसको पूर्ण करने के लिए विद्यार्थी स्वयं योजना बनाता है।

प्रोजेक्ट विधि--ड्यूवी के समाज शास्त्र और जेम्स तथा थार्नडाइक के मनोविज्ञान से प्रभावित हुई है। उपर्युक्त दोनों शिक्षाविदों ने अनुभव को शिक्षण में मुख्य स्थान दिया है। प्रोजेक्ट विधि में तीन बातें मुख्य रूप से समाहित हैं:--(1) बौद्धिक, (2) शारीरिक, (3) स्वभावगत। बालक का किसी भी समस्या को हल करने की शक्ति प्राप्त करना, शारीरिक सीखने का अर्थ है हाथ से काम करने की कला में पटु होना और स्वभावगत का अर्थ है अच्छी रुचियों का निर्माण। प्रोजेक्ट विधि के यही तीन मुख्य अंग है। इस पद्धति में क्रिया को प्रधानता दी जाती है। इसका मुख्य उद्देश्य यही है कि बालक जो कुछ सीखे वह स्वयं सक्रिय रह कर करे। यदि उन्हें उचित प्रकार एवं रुचि के अनुसार कार्य दिये जायं तो उसे करने में बालकों को आनन्द आता है।

यथार्थता--प्रोजेक्ट के समस्या मूलक कार्य के यथार्थता का होना आवश्यक है। जो समस्यात्मक कार्य बालकों को दिये जायं वे वास्तविक होने चाहिये ताकि सभी आवश्यक तत्वों को वे समझने में समर्थ हो सकें और भावी जीवन में उनका उपयोग कर सके।

स्वतन्त्रता--प्रत्येक प्रोजेक्ट में बालकों को अपना स्वयं कार्य चुनने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये। शिक्षक की योग्यता इसी बात पर निर्भर है कि वह बालकों को इस बात के लिए उत्साहित करें कि जिस प्रोजेक्ट पर शिक्षक कार्य करवाना चाहता है उसका प्रस्ताव बालक स्वयं रक्खें।

प्रोजेक्ट के प्रकार--(1) व्यक्तिगत, (2) सामूहिक, व्यक्तिगत प्रोजेक्ट में बालक अलग-अलग ढंग से कार्य करता है। सामूहिक प्रोजेक्ट में एक ही प्रोजेक्ट पर सम्पूर्ण कक्षा कार्य करती है। इसमें सहयोग की भावना जागृत होती है एक दूसरे से मिलकर बालक कार्य करते हैं।

प्रोजेक्ट प्रणाली की कार्य पद्धति--एक प्रोजेक्ट के पूर्ण करने के लिए चार पदों की आवश्यकता होती है:--(1) उद्देश्य निर्धारित करना, (2) कार्यक्रम बनाना, (3) कार्य सम्पूर्ण करना। इसके अतिरिक्त एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पद है--

कार्य का मूल्यांकन--कुछ भी प्रोजेक्ट के सम्बन्ध में कार्य किया जाय बालकों को उसका लेखा अवश्य रखना चाहिए। बालकों तथा शिक्षकों को यह निर्णय करना होता है कि

कार्य कहां तक सफल हुआ। बालकों को भी अपना विचार व्यक्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिये। सभी बिन्दुओं पर समस्त कक्षा के सम्मुख विचार विमर्श होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त अन्त में कार्य की आलोचना होनी चाहिये।

प्रोजेक्ट प्रणाली की उपयोगिता--इस योजना के द्वारा प्रत्येक बालक की योग्यता से लाभ उठाया जा सकता है। समुदाय में कार्य करने की पद्धति से उसका अभ्यास विद्यालयी जीवन से ही प्रारम्भ हो जाता है। व्यक्तिगत विकास के प्रोत्साहन से उसे प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के प्रति आदर की भावना का विकास होता है।

सफलता तथा विफलता दोनों के परीक्षण से बालक में कुंठा (frustration) नहीं आ पाती। यह पद्धति मनोविज्ञान पर आधारित है। बालकों को किताबी कीड़ा बनने से बचाया जाता है।

क्रियाशीलता--पुरानी शिक्षण पद्धतियों में रटने पर बल दिया गया है किन्तु इसमें क्रियाशीलता एवं नवीनता सदैव विद्यमान रहती है। प्रतिदिन आने वाली समस्याओं का सामना करने हेतु बालक प्रस्तुत रहता है।

दोष--सैद्धान्तिक दृष्टि से इसमें त्रुटियां भी हैं। यह विधि ड्यूवी के प्रयोजन वाद पर आधारित है जो कि किसी भी सिद्धान्त को शाश्वत नहीं मानता। अतः सत्य तथा मूल्यों के प्रति उसकी उपेक्षा है। इससे शिक्षा का मूल्य ही नहीं रहता।

इस पद्धति में बालकों को विभिन्न विषयों का शिक्षण नियमित रूप से नहीं मिलता। बालक का ज्ञान शृंखलाबद्ध नहीं होता। इस प्रणाली द्वारा शिक्षण में पाठ्यक्रम पूरा नहीं होता।

यह विधि बहुत खर्चीली है जो कि भारत जैसे विकासशील देश में सम्भव नहीं है। स्कूल की व्यवस्था की दृष्टि से यह विधि हानिकारक है। काम करने का कोई निश्चित समय नहीं रहता।

डाल्टन प्रणाली--इस विधि का जन्म अमेरिका के डाल्टन नगर में हुआ और इसकी आविष्कर्ती कु० हेलन पार्खस्ट थीं। इस विधि का प्रयोग पहले विकलांग बालकों के लिए किया गया किन्तु यह स्वरूप बालकों पर कारगर सिद्ध हुई। इस योजना का उद्देश्य बालकों को साधारण कक्षा में मिलने वाले जीवन की परिस्थितियों से बिलकुल भिन्न परिस्थितियों में रख कर एक नये प्रकार के शैक्षणिक समाज को जन्म देना तथा विद्यालय के सामाजिक जीवन का पुनः संगठन करना था। यह विचार मिस हेलन पार्खहर्स्ट के थे। प्रचलित कक्षा शिक्षण के महत्व को समाप्त करके वैयक्तिक शिक्षण के उद्देश्य को अपनाया जाय और कक्षा में इस प्रकार की परिस्थितियों को प्रोत्साहन दिया जाय जो व्यक्तिकता को प्रोत्साहित करें। इस योजना की आवश्यकता प्रचलित शिक्षा में दैनिक कार्यक्रम का प्रारम्भ दिन भर के कार्य की योजना बनाने से प्रारम्भ होता है। इसके लिए 15 से 30 मिनट दिये जाते हैं। तीन घंटे विषय सम्बन्धी प्रयोगशाला में कार्य करने को कहा जाता है फिर तीसरे पहर बालकों को व्यक्तिगत रूप से या सामूहिक रूप से रचनात्मक कार्य तथा खेल में भाग लेने के अवसर प्रदान किये जाते हैं। इस योजना के अन्तर्गत कक्षा के कमरे के स्थान पर विभिन्न विषयों की प्रयोगशालायें होती हैं। इन प्रयोगशालाओं में समस्त सामग्री उपलब्ध होती है जो विषय सम्बन्धी कार्य करने में बालकों को चाहिए। शिक्षक प्रत्येक विषय की प्रयोगशाला में बालकों को सहायता पहुंचाने के लिए उपस्थित रहता है। एक वर्ष में लगभग आठ ठेके प्रत्येक विषय में उन्हें दे दिये जाते हैं।

डाल्टन प्रणाली के प्रमुख सिद्धान्त निम्न हैं--

(1) बाल केन्द्रित शिक्षा।

(2) अध्ययन के लिए बालक को पूर्ण स्वतन्त्रता।

(3) बालक द्वारा स्वयं प्रशिक्षण।

(4) शिक्षक पथ प्रदर्शक ।

(5) सामूहिक शिक्षा ।

डाल्टन योजना में शिक्षक के स्थान पर बालक का स्थान प्रमुख है । वह अपनी रुचि एवं योग्यता के अनुसार शिक्षा ग्रहण करता है । उसकी प्रगति उसकी स्वयं रुचि एवं योग्यता के ऊपर निर्भर है ।

अध्ययन के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता है अतः बालक अपनी गति से विषय सम्बन्धी ज्ञान ग्रहण करता है । बालक अपनी रुचि से कार्य में लीन रहता है अतः अनुशासन की कोई समस्या नहीं उठती ।

प्रत्येक बालक कार्य के अनुसार अपने ठेके को पूरा करता है और वह अपना स्वशिक्षण करता है ।

शिक्षक पथ प्रदर्शक के रूप में कार्य करता है । वह बालकों को एक माह में कितना कार्य करना है इसका निर्धारण करता है । जहां बालक किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव करते हैं वहां उनकी सहायता करता है ।

वैयक्तिक शिक्षा पर बल देते हुए भी सामूहिक शिक्षा की उपेक्षा नहीं की जाती। इसमें सामूहिक भावनाओं का भी विकास होता है ।

कार्य आरम्भ करने के पूर्व सब विद्यार्थी सामूहिक रूप से एकत्र होते हैं । इस प्रकार एक दूसरे के सम्पर्क में आने का अवसर मिल जाता है । सायंकाल खेल तथा रचनात्मक कार्यों में भी वे सामूहिक रूप से भाग लेते हैं । प्रयोगशाला में भी वे स्वतन्त्र रूप से कार्य करते हैं ।

विशेषताएं--(1) विद्यालय प्रयोगशाला का रूप ले लेती है । जहां बालकों को सारी सामग्री उपलब्ध होती है ।

(2) विचार विमर्श एवं सम्मेलन--जो भी कार्य बालकों को ठेके के रूप में दिया जाता है उस पर सामूहिक विचार विमर्श का समय मिलता है ।

(3) प्रगति सूचक रेखा चित्र--यह तीन प्रकार के होते हैं । (1) बालक ने कितनी प्रगति की है । (2) विशेषज्ञ द्वारा भरा जाता है । तीसरे रेखाचित्र में प्रत्येक विद्यार्थी का सभी विषयों में किया कार्य अंकित किया जाता है ।

डाल्टन योजना के दोष--(1) बालक के ऊपर बहुत अधिक उत्तरदायित्व डाल दिया जाता है ।

(2) भाषा शिक्षण में यह योजना सफल नहीं है ।

(3) सामूहिक भावना का पूर्ण विकास नहीं हो पाता ।

(4) विभिन्न विषयों में समन्वय स्थापित नहीं हो पाता ।

किन्डर गार्टेन विधि--किन्डर गार्टेन का अर्थ है 'बच्चों का बाग' । शिक्षा शास्त्री फ्रोबेल ने किन्डर गार्टेन पद्धति में खेल और शिक्षा का अपूर्ण समन्वय किया है । जिस प्रकार उद्यान के पौधे को माली हर तरफ से देख-रेख करता है उसी प्रकार--पौधे रूपी बालक को शिक्षक द्वारा देख-भाल होती है । फ्रोबेल प्रसिद्ध तत्व ज्ञानी तथा शिक्षा शास्त्री था अतः समस्त विश्व में एक ही तत्व की प्रधानता मानता । शिक्षा का उद्देश्य इसी एकता को बोध कराना है । इस विधि में फ्रोबेल ने उपहारों का आयोजन किया है ।

किन्डर गार्टेन की पढ़ाई की सारी प्रक्रिया उपहारों पर है । इन उपहारों की संख्या बीस है पर उसमें से सात मुख्य हैं । यह सात भी लम्ब, गोल, घन इन तीन आकृतियों पर आधारित है । उपहारों में रंग तथा आकृति का ज्ञान भी बच्चों को कराया जाता है । इस

प्रणाली में पौधों, पक्षियों और पशुओं से बालक का सम्बन्ध हर समय रहता है। किन्डर गार्टेन विद्यालयों छोटे-छोटे पशु, चूहे, खरगोश, गिलहरी आदि जालीदार बक्सों में पाले जाते हैं।

बालक कहानी सुनने में अत्यधिक आनन्द प्राप्त करता है अतः शिक्षक द्वारा कहानी पद्धति से उनमें बातों की जानकारी रुचिकर ढंग से दी जाती है। संगीत आन्तरिक प्रेरणा देता है। सद्वृत्तियों को जागृत करता है। इस प्रणाली में संगीत और कविता दोनों का स्थान महत्वपूर्ण है। बच्चे अभिनय गीत (Marching Song) संगीत की लय के साथ करते हैं।

शारीरिक शिक्षा द्वारा बच्चों का स्वास्थ्य सुधारा जाता है। उनसे अनेक प्रकार की कसरतें कराया जाती हैं। लकड़ी की बन्दूकें, पंखें आदि की सहायता से बच्चे संकेतों के द्वारा कसरत करता है।

किन्डर गार्टेन प्रणाली में जहां पारिवारिक वातावरण का ध्यान रखा जाता है वहां व्यवसायिकता पर भी समान बल है। नैतिक गुणों का विकास, प्रकृति के प्रति प्रेम उसका पर्यवेक्षण, सूक्ष्म अध्ययन, उनमें सृजनात्मक शक्ति का विकास करता है। इन्द्रिय शिक्षा पर सबसे पहले हमारा ध्यान आकर्षित करने वाला फ्रोबेल ही था। इस शिक्षण विधि में इन्द्रिय शिक्षा के साथ-साथ विचारोत्पति में सहायता मिलती है।

यह पद्धति अनेक गुणों से युक्त होते हुये भी एक क्रीड़ा का रूप बन कर रह गयी है। शिक्षा का स्वरूप धूमिल हो गया है। उपहारों का शैक्षिक कार्यक्रम इतना विस्तृत हो गया है कि चार वर्ष के बच्चों के अनुभव में परे की बात हो गयी है। कल्पना पर अधिक बल होने के कारण बालक वास्तविकता से दूर हो जाता है।

(1) संदर्भ पुस्तकें--सीताराम चतुर्वेदी--शिक्षा प्रणालियां और उनके प्रवर्तक।

(2) शिक्षण विधियों की रूपरेखा--राम खेलावन चौधरी--Dewey- The School and Society.

शिक्षक के लिए निर्देश--

1--डाल्टन प्रोजेक्ट प्रणाली में शिक्षक विद्यार्थियों के सहयोग से कोई भी प्रोजेक्ट सरलता से चुन सकता है--जैसे विद्यालय की स्वच्छता, मेजों और कुर्सियों, दरवाजों पर पालिश का कार्य--

(1) बागवानी का कार्य।

(2) भावात्मक एकता उत्पन्न करना।

(3) राष्ट्रीय उत्सवों में विद्यालय में सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन।

(4) वृक्षारोपण।

(5) अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना शिक्षा योजना--यह योजना प्रतिवर्ष विद्यालय में चलायी जाय, विद्यार्थी दूसरे देशों की पुस्तकों, पत्र-पत्रिकायें तथा व्यक्तियों से शिक्षक के निर्देशन से सम्बन्ध स्थापित करें। साल के अन्त में उस देश के निवासियों को मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित करें एवं उस देश के सांस्कृतिक कार्यक्रम में भाग लें। अपने देश की सभ्यता, संस्कृति, रीति-रिवाजों से भी उनका परिचय करावें तथा पूर्ण सहयोग प्राप्त करने का मार्ग सुलभ करें।

डाल्टन योजना--शिक्षक को विद्यार्थी की व्यक्तिगत विशेषता पर नजर रखनी चाहिये और उसी के अनुसार उसे उजागर करने के लिए वातावरण उत्पन्न करना।

उदाहरण--विद्यालय में शैक्षिक प्रदर्शनी का आयोजन जिसमें अभिभावक भी अवलोकन हेतु आ सकें। प्रत्येक बालक को अपनी योग्यता, रुचि, सामर्थ्य के अनुसार सामग्री एकत्रित करने की छूट।

(2) एकत्रीकरण के पश्चात् सम्मेलन ।

(3) उनके वैधयुक्तता पर विचार-विमर्श--इन सारे क्रिया-कलापों में शिक्षक का निर्देशन रहेगा ।

माइक्रो शिक्षण--को सूक्ष्म शिक्षण भी कहा जाता है । माइक्रो शिक्षण का विकास स्टेन फोर्ड विश्वविद्यालय में ऐलेन तथा उनके सहयोगियों ने किया । यह एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा प्रशिक्षार्थी मूल शैक्षिक कुशलताओं को अभ्यास करके सीख लेता है । जब वह शिक्षण करता है तो यह कुशलताएं उसके शिक्षण को प्रभावशाली बनाती है मूल रूप से माइक्रोच शिक्षण एक छोटे पैमाने पर शिक्षण अनुभव है जिसमें एक शिक्षक एक छोटे इक ई जिसमें पांच विद्यार्थियों का समूह होता है, एक छोटे काल तक, 5 से 20 मिनट तक शिक्षण होता है । इस प्रणाली में शिक्षक को नयी कुशलता सीखने में तथा पुरानी को सुधारने में सहायता मिलती है । इस प्रकार के शिक्षण में प्रशिक्षणार्थी को अपने कार्य के सम्बन्ध में तुरन्त सूचना अपना पाठ पूरा करने के पश्चात् मिल जाती है ।

माइक्रो शिक्षण में निम्न प्रकार का कार्यक्रम अपनाया जाता है :--

(1) एक विशिष्ट शिक्षण कला को छांट लिया जाता है---उदाहरण प्रश्न पूछना पहले इसको पारिभाषित किया जाता है । फिर विडियो टेप या फिल्म जो उस विशिष्ट कुशलता के लिए बनाये गये हैं । उन्हें दिखा दिया जाता है । इसके न होने पर प्रशिक्षार्थी को लिखित सामग्री इस कुशलता के सम्बन्ध में दे दी जाती है । यह सब उसे प्रदर्शित करने के लिए कहा जाता है ।

(2) एक छोटे पाठ की योजना बनाता है जिसमें वह कुशलता का प्रयोग करता है ।

(3) प्रशिक्षार्थी पाठ को विद्यार्थियों के एक छोटे समूह को पढ़ाता है जिसको विडियो टेप कर लिया जाता है या वह पर्यवेक्षक द्वारा निरीक्षित किया जाता है ।

(4) जो प्रतिपोषण शिक्षण के सम्बन्ध में प्रशिक्षार्थी को मिलता है तथा पर्यवेक्षक जो उसकी त्रुटियां इत्यादि की ओर उसका ध्यान दिलाता है उसको ध्यान में रखकर शिक्षक अपने पाठ की पुनः योजना बनाता है तथा त्रुटियों का निराकरण करने का प्रयत्न करता है ।

(5) किस सीमा तक सफलता मिलती है इसका प्रतिपोषण दिया जाता है और दुबारा पढ़ाये गये पाठ का विश्लेषण पर्यवेक्षक की सहायता से किया जाता है ।

(6) यह शिक्षण (4 से 7) पदों तक बार-बार दुहराया जाता है जब तक पर्याप्त सीमा तक कुशलता नहीं आ जाती ।

माइक्रो शिक्षण तथा अभ्यास शिक्षण---परम्परागत अभ्यास शिक्षण में अनेक दोष हैं । इस प्रकार के शिक्षण में केवल कुछ प्रदर्शन पाठ प्रशिक्षार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत किये जाते हैं और कुछ सिद्धान्त बताकर कक्षा में भेज दिये जाते है नया शिक्षक सीख नहीं पाता कि क्या कुशलतायें उसमें शिक्षण देने के लिए होनी चाहिए । उसके मन में तनाव की स्थिति रहती है । माइक्रो शिक्षण में एक छोटे सीमित समूह को अधिक समय तक पढ़ाने को कहा जाता है । इसमें कुशलताओं को विकसित करने की पहचान पहले ही कर ली जाती है और फिर शिक्षक उनको विकसित करने की चेष्टा करता है । अतएव इसमें शिक्षण के दोषों को दूर करने में पर्याप्त सफलता मिलने की सम्भावना है ।

कुछ विषयों में माइक्रो शिक्षण अधिक प्रभावशाली है यथा-गणित, जीव विज्ञान, शारीरिक शिक्षा तथा भाषा यह अध्ययन माइक्रो शिक्षण में उन तत्वों की खोज के सम्बन्ध में हुये जो कि विद्यार्थी की कार्य क्षमता में बहुत अधिक परिवर्तन लायें ।

माइक्रो शिक्षण का प्रयोग सावधानी से करने चाहिए ।

शिक्षकों के लिए--

हमारे यहां विद्यालयों में यांत्रिक साधनों का अभाव है किन्तु साथ-साथ प्रशिक्षण का उद्देश्य शिक्षण कुशलता का विकास करना है अतएव अध्यापक को विडियों टेप, टेप रिकार्डर आदि साधनों के अभाव में स्वयं सक्रिय होना पड़ेगा । छोटे-छोटे समूहों में कक्षा को बांट कर प्रशिक्षार्थी की अपेक्षित कमी को समझ कर अभ्यास कराने की आवश्यकता है । समूह के प्रतिभागियों से भी प्रशिक्षार्थी को सुझाव दिये जा सकते हैं ।

संदर्भ ग्रन्थ--शिक्षण कला, शिक्षण तकनीक एवं नवीन पद्धतियां डा० एस० एस० माथुर ।

योजना बद्ध सीखना अथवा अभिक्रमित उपागम

वर्तमान समय में जन संख्या की वृद्धि के कारण शिक्षण मशीनों का महत्वपूर्ण स्थान हो गया है । ये मशीनें शिक्षण सामग्री को इस प्रकार प्रस्तुत करती हैं कि विद्यार्थी अपने आप सीखता चला जाता है । इस प्रकार सीखने की विधि को हम योजना बद्ध अथवा प्रोग्राम सीखने की विधि कहते हैं । योजनाबद्ध सीखना पाठ्य सामग्री के योजना बद्ध कारण पर निर्भर करता है । योजनाबद्ध सीखना यद्यपि कि शिक्षण मशीनों के साथ ही सम्बन्धित माना जाता है किन्तु शिक्षार्थी मशीनों से नहीं सीखता वरन् मशीन में निहित शिक्षण सामग्री से सीखता है ।

विशेषतायें—

1--योजना शब्द इस बात का संकेत देता है कि जो सीखने का प्रतिदर्श है वह योजित है ।

जो पदार्थ शिक्षार्थी को सीखना है वह क्रम-बद्ध ढंग से किया गया है ।

2--विद्यार्थी सरल विचारों से जटिल की ओर बढ़ता है । केवल वही पदार्थ प्रस्तुत किया जाता है जो उपयुक्त है और जिसके लिए विद्यार्थी तार्किक और मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार है । विचारों को अनेक बार योजना बद्ध पदार्थ के अनेक छोटे-छोटे अंशों में प्रस्तुत होने में लाभ यह है कि विद्यार्थी को स्वयं पता रहता है कि वह सही मार्ग पर है या गलत । इस प्रकार के सीखने में एक लाभ यह भी है कि प्रत्येक विद्यार्थी अपनी स्वयं की प्रगति की गति से आगे बढ़ता है ।

शिक्षण मशीनें---

वह यन्त्र है जिनमें प्रोग्राम भर दिये जाते हैं । एक प्रश्न या समस्या विद्यार्थी के सामने रखी जाती है जो मशीन में बनी एक खिड़की से दिखाई जाती है ।

कुछ इस प्रकार का आयोजन किया जाता है कि जो व्यक्ति मशीन पर कार्य कर रहा है वह अपना उत्तर अंकित कर सके । उत्तर अंकित होने के पश्चात् विद्यार्थी को तुरन्त उसके सही अथवा गलत होने का पता लग जाता है ।

प्रश्नों के बीच के समय पर बहुधा विद्यार्थी का नियन्त्रण होता है क्योंकि यह मशीनें व्यक्तिगत प्रयोग के लिये निर्माण की जाती हैं ।

स्वशिक्षण उपकरणों के प्रयोग से लाभ :--

1--यह शिक्षकों को अनेक आवश्यक किन्तु उकताहट देने वाले कार्यों से स्वतंत्र कर देती है ।

प्रोग्राम शिक्षण द्वारा परीक्षण भी सफलता से हो जाता है । शिक्षक परीक्षा-पत्रों को जाँचने से बच जाता है । समय की बचत उसे अन्य कार्यों के लिये समय देना है ।

कक्षा शिक्षण की अपेक्षा स्वशिक्षण सम्बन्धी प्रयोगों से पता चलता है कि सीखने के समय में 50 प्रतिशत कमी कक्षा शिक्षण द्वारा सीखने के समय के तुलनात्मक लाई जा सकती है ।

शिक्षण मशीनें निदानात्मक होती हैं । स्वशिक्षण उपकरण द्वारा जब वह सीखता है तो वह उस समय तक आगे पढ़ ही नहीं सकता जब तक कि वह अपनी त्रुटि जान न ले और उसे सुधार न ले ।

स्वशिक्षण उपकरण व्यक्तिगत शिक्षण देते हैं । उनके द्वारा धीमी गति में चलने वाले विद्यार्थी को अपनी गति से चलने का समय प्राप्त होता है ।

शिक्षक के लिए निर्देश --

स्वशिक्षण का कार्य पूर्ण रूप से मशीन द्वारा शिक्षण है अतः शिक्षण मशीन के अभाव में पाठ को योजनाबद्ध करके शिक्षार्थी को निर्देशन देना चाहिए ।

शिक्षक को छोटे रूप में निदानात्मक परीक्षण का सहारा लेना चाहिए ।

सहायक पुस्तकें--

शिक्षण कला, शिक्षण तकनीक एवं नवीन पद्धतियां ।

संदर्शिका--सृजन हेतु आयोजित कार्यशालों के प्रतिभागी गण

1--श्रीमती हमीदा अजीज

2--श्री अब्दुल मालिक

3--श्री रामचरित्र मिश्र

4--श्री अनन्त राम मिश्र

5--कु0 गोविन्द आनन्द

6--श्री रुद्र प्रकाश श्रीवास्तव

7--कु0 इन्दिरा खन्ना

8--डा0 चन्द्रावती सिंह

9--श्री विश्वनाथ लाल

10--श्री ओंकार स्वरूप माथुर

11--श्रीमती पुष्पा मालवीया

12--श्रीमती शुभवन्ती त्रिपाठी

13--कु0 गीता अवस्थी

14--कु0 मोहिनी बाला

NIEPA DC
D00344

पी0एस0 यू0पी0--28 शिक्षा--28-4-81--1,000 (पी0डी0)।